चौपाई

विसमयवति देखि महतारी। भये बहुरि सिसुरूप खरारी॥
बालचरित हरि बहुबिधि कीन्हा। अति आनँद दासन्ह कहँ दीन्हा॥
कछुक काल बीते सब भाई। बड़े भये परिजन-सुख दाई॥
चूड़ाकरन कीन्ह गुरु जाई। विप्रन्ह पुनि दछिना बहु पाई॥
परम मनोहर चरित अपारा। करत फिरत चारिउ सुकुमारा॥
भये कुमार जबहिं सब भ्राता। दीन्ह जनेऊ गुरु-पितु-माता॥
गुरुगृह गये पढ़न रघुराई। अलप काल विद्या सब पाई॥
विद्या-विनय-निपुन गुनसीला। खेलहिं खेल सकल नृप लीला॥
बंधु सखा सँग लेहिं बोलाई। बन मृगया नित खेलहिं जाई॥
अनुज सखा सँग भोजन करहीं। मातु-पिता-आज्ञा अनुसरहीं॥
जेहि विधि सुखी होहिं पुरलोगा। करहि कृपानिधि सोइ सजोगा॥
वेद पुरान सुनहिं मन लाई। आपु कहहिं अनुजन्ह समुझाई॥
प्रातकाल उठि कै रघुनाथा। मातु पिता गुरु नावहिं माथा॥
आयसु माँगि करहिं पुरकाजा। देखि चरित हरपहिं मन राजा॥

श्री

तुलसी-संग्रह

OR

Selections from the Ramayana

OF

TULSIDAS

Compiled and edited

BY

KASHI RAMA, M. A., S. C.
Inspector of Sanskrit Pathashalas, United Provinces

AND

SAHITYABHUSHAN
CHATURVEDI DWARKA PRASAD SHARMA
Member
Royal Asiatic Society of Great Britain and Ireland

ALLAHABAD
RAM NARAIN LAL
PUBLISHER AND BOOKSELLER

1928

3rd impression]
2,000 Copies

[Price 10 annas

चौपाई

कपटी कायर कुमति कुजाती। लोक वेद बाहर सब भाँती॥
राम कीन्ह आपन जबही तें। भयउँ भुवन भूषन तब ही तें॥
देखि प्रीति सुनि विनय सुहाई। मिलेउ बहोरि भरत-लघु-भाई॥
कहि निषाद निज नाम सुबानी। सादर सकल जोहारी रानी॥
जानि लषनसम देहिं असीसा। जियहु सुखी सत लाख बरीसा॥
निरखि निषाद नगर-नर-नारी। भये सुखी जनु लषन निहारी॥
कहहिं लहेउ एहि जीवन लाहू। भेंटेउ रामभाइ भरि बाहू॥
सुनि निषाद निज भाग बड़ाई। प्रमुदित मन लइ चलेउ लेवाई॥

दोहा

सनकारे सेवक सकल, चले स्वामि रुख पाइ।
घर तरु तर सर बाग बन, बास बनाएन्हि जाइ॥

NOTES

17 सरोरुह [That which grows in a pond a lotus] पद्म, पङ्कज, वारिज, सरोज, सरसिज, कमल are other names

19 पुरइनि—कुमुदिन ,

,, धुनि, अवरेव गुन, and जाती are the four kinds of कवित्त They are also names of various kinds of fishes

अवराई अमरिया (आम के वृक्षों की बगीचियाँ)

संजम " अहिंसा सत्यमस्तेय ब्रह्मचर्यं दयार्जवम् ।
क्षमा धृतिर्मिताहारः शौच च दश संयमाः ॥"

अहिंसा (Harmlessness), सत्य (Truth), अस्तेय (not stealing the property of others), ब्रह्मचर्य (observance of strict celibacy), दया (kindness), नम्रता (Modesty), क्षमा (Forgiveness), धृति (constancy of purpose), मिताहार (temperance in food and drink), शौच (purity of conduct) are the ten requisites of a well regulated life

नियम – " शौचत्यागस्तपो दान स्वाध्यायश्चाप्रतिग्रह ।
व्रतोपवासमौनानि स्नान च नियमा दश ॥ "

शौच (Purity of body), त्याग (Renouncement It also means giving gifts to the poor), दान (giving of alms, The difference between त्याग and दान as pointed out here is this, त्याग is done to help the needy without caring for its reward, while दान is done with a view to get some reward), स्वाध्याय (the study of the holy Vedic texts), अप्रतिग्रह (not receiving alms for the sake of enjoyment), व्रत (observance of vows), उपवास (keeping fasts), मौनानि (silence), स्नान (bathing) are the ten parts of नियम

PREFACE

The Ramayan of Tulsidas is at once a book of morals, of religion, of ideals and of classics The description of Ajodhya is a description of the seat of righteousness The atmosphere of the place is an atmosphere of piety and of faith The inhabitants are the ideals of truth and faithfulness The work is a master-piece of literature in Hindi In it the author's imagination takes sublime flights of reverence for his hero who is the very spirit of God descended on earth as an incarnation to uproot vice and to preserve virtue

The following selections are the outcome of an idea to put before the students preparing for the University or other public examinations in Hindi, the different phases of the life of Rama, which are the different expressions of virtue and piety

The plan adopted in these pages has been that the life of the author is given in the beginning, then the whole story of the Ramayan is given in narrative form and then the text In making the selections, effort has been made to preserve the thread of the story Each selection has a short note to give an idea to the reader of the situation of the scenes Here and there a footnote is added to explain a word of unusual nature About the end of the book are given a few explanations of certain very difficult words, expressions, allusions and of references in English, just to help the students in the understanding of the text

For students into whose hands this book may come, it may not be superfluous to add here the so often repeated caution as to the proper function of notes, and to ask them to remember that the value of these is wholly subsidiary to the text, that it is the text which they should read first and several times, and that the notes should be read afterwards Such criticism as is attempted in the notes is meant to provoke thought, and not to encourage cram.

27 बर—Boon

, जे निज भगत नाथ etc —Is the object of देहु in the next दोहा [O my God ! the bliss that is enjoyed and the future state that is attained by your devotees, in your mercy grant to me also that bliss, that state, that devotion that love to your feet, that knowledge, and that existence]

,, 28 बिबेक अलौकिक तोरे—Your supernatural wisdom

,, ,, कबहु न मिटिहि—Shall never fail

,, ,, इच्छामय etc —Voluntarily assuming human guise I will manifest myself in your house

, ,, अंसन्ह—Phases

,, ,, आदि सक्ति—Primal energy

,, ,, आस्रमनि—Hermitage

,, ,, अमरावति - The city of the immortals

,, 29 नीतिनिधाना—A store-house of good policy

,, ,, समीती—Another reading is सुमीती

,, ,, दोहाई—Proclamation

,, 30 बाजे गहगहे निसाना - Midst a flourish of drums and trumpets

कटकाई—Expeditionary force

,, ,, अरपित – Did dedicate

,, 31 गभीर बन—Dense forest

,, ,, हय आरव पाये—Hearing the tramp of the horse

,, ,, कोल – A boar , पीवर fat , fatness

,, ,, नील महीधर-सिखरसम—Like the peak of some purple mountain

,, ,, रव – *Lit* , means noise , here used in the sense of speed

,, ,, तकि तकि—Taking steady aim

विषय-सूची

and stop the pass, and all join to discover the mystery When we know whether he is a friend, an enemy or a neutral, we can then lay our plans accordingly

Page 98 श्वपच—One who cooks for a dog, a *chandal*

" 101 बिसरे (बपहि) अपान—Lost their consciousness

" 102 नृपनयनियम निचोरि—The very essence of politics and ethics

" 103 मइँ—मैंने भी

" 104 अखिल अमंगल भार—The burden of every ill

" 105 देवतरु—कल्पवृक्ष

" 107 प्राण प्राण के etc —Oh ! Rama you are the life of our life, the soul of our soul, and happiness of our happiness Those who like to stay away at home, leaving you are surely ill-fated

" " पुरोधा—पुरोहित (वशिष्ठ)

" 108 अमिय—अमृत

" 110 करम वचन मानस इत्यादि—हे भ्राता ! कर्म, वचन, और मन से निर्मल तुम्हारे समान तुम ही हो। बड़े लोगों की समाज में छोटे भाई के गुण कुसमय में कैसे कहे जाय ?

" 112 देशकाल, अवसर सरिस—As time and circumstances demanded

" 115 माया ईस न आपु कह—

That is to be called soul which, through the power of delusion, does not recognize itself as being really God

" 115 मन, क्रम, वचन—Thought, word and deed

" 120 सावधान सुनु etc —Hear attentively and bear in mind

" 121 जहँ नहिँ फिरे—Whence no one returns *Cf.*—
" यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम "

" 122 वारिज—(वारि = जल , द—देने वाले *i e*) Clouds

॥ हरिः ओंतत्सत् ॥

श्री तुलसीदास जी

गोसाईं

गोसाईं तुलसीदास जी बुन्देलखण्ड प्रान्त के अन्तर्गत ज़िला बाँदा के राजापुर नामक ग्राम के रहने वाले थे। वे जाति के ब्राह्मण तो अवश्य थे, किन्तु कान्यकुब्ज थे अथवा सरयूपारी; इस विषय को लेकर उनकी जीवनी-लेखकों में मतभेद है। जो कुछ हो, यह निश्चित है कि, गोसाईं जी थे ब्राह्मण। उनका जन्म, संवत् १५८९ वि० के लगभग हुआ था। उनके गुरु का नाम नरहरिदास प्रसिद्ध है।

कहते हैं, तुलसीदास जी अपनी स्त्री पर ऐसे आसक्त थे कि, विना उसे देखे, उन्हें कल ही नहीं पड़ती थी। उनकी ससुराल से कई वार जब उनकी स्त्री के लिये बुलावा आया और तुलसीदास ने विदा न की, तब एक दिन उनका साला स्वयं विदा कराने आया। तिस पर भी गोसाईं जी ने विदा न की। तब उनकी स्त्री उनकी अनुपस्थिति में अपने भाई के साथ चल दी। लौटने पर पड़ोसियों से तुलसीदास ने सुना कि, उनकी स्त्री अपने पीहर गयी है। सुनते ही वे सीधे अपनी ससुराल की ओर चल दिये। उनकी स्त्री उन को देख बहुत क्रुद्ध हुई और ताना देती हुई बोली कि, तुम्हारा जितना प्रेम मेरे इस हाड़ मांस के शरीर पर है, उतना ही प्रेम

यदि तुम्हारा श्रीराम जी के चरणों में होता, तो न जाने तुम क्या हो गये होते ! स्त्री की यह बात तुलसीदास को छू गयी और उनके मन में वैराग्य उत्पन्न हो गया। वे वहाँ से चल कर काशी पहुँचे और वहीं रहने लगे। वहाँ रह कर, भगवान् का वे आराधन किया करते थे।

अचानक उन पर एक प्रेत प्रसन्न हुआ और उसकी सहायता से उन्हें हनुमान जी के दर्शन हो गये। फिर हनुमान जी के कहने से वे चित्रकूट में जा भगवान् का आराधन करने लगे। कहा जाता है, वहाँ उनको श्रीरामचन्द्र जी के दर्शन हुए। तदनन्तर वे चित्रकूट को छोड़, अयोध्या में जा बसे। वहाँ श्रीरामचन्द्र जी ने तुलसीदास जी को स्वप्न दिया और हिन्दीभाषा में राम-चरित-मानस की रचना करने का आदेश दिया। तदनुसार गोसाईं जी ने संवत् १६३१ वि० में उक्त ग्रन्थ का बनाना आरम्भ किया और उसी वर्ष के चैत्र मास की नवमी मंगलवार को तुलसीदास जी ने स्वरचित राम चरित-मानस को अयोध्या में प्रकाशित किया।

परन्तु कहा जाता है कि, उक्त ग्रन्थ की रचना करते समय वे अरण्य-काण्ड तक भी नहीं पहुँच पाये थे कि, इस बीच में अयोध्या के वैष्णवों से उनका किसी बात पर झगड़ा हो गया। तब वे अयोध्या छोड़ काशी चले गये और वहाँ असी घाट पर लोलार्क-कुण्ड के समीप रहने लगे। वहाँ उनके रहने से उस नगरी में राम-चर्चा फैल गयी। फिर क्या था, जिन शास्त्रियों का व्यवसाय केवल वाद विवाद, ही करना था, वे गोसाईं जी से शास्त्रार्थ करने को उद्यत हुए। अन्त में यह बखेड़ा काशी के एक दण्डी स्वामी मधुसूदन के बीच में पड़ने से शान्त हो गया। शास्त्रार्थ इस बात का था कि, गोस्वामी जी "भाखा" में रामायण क्यों बनाते हैं। इस पर उन झगड़ालू शास्त्रियों के सामने मधुसूदन स्वामी ने यह श्लोक पढ़ा :—

"परमानन्दपत्रोऽयं जङ्गमस्तुलसीतरुः ।
कवितामञ्जरी यस्य रामभ्रमरभूषित. ॥"*

कहा जाता है, इस श्लोक को सुन वे शास्त्री लज्जित हुए और तुलसीदास से अपना अपराध क्षमा करवाया।

यह झगड़ा शान्त हुआ ही था कि, तुलसीदास जी को लेकर काशी में फिर बड़ी हलचल मच गयी। बात यह थी कि, एक हत्यारा भीख माँगता तथा राम राम कहता हुआ काशी में जा पहुँचा था। तुलसीदास जी ने उसे स्नान करा कर तथा अपने साथ पंक्ति में बैठा भोजन कराया। बस, काशी के कतिपय निठल्ले और कलहप्रिय ब्राह्मणों को कोलाहल मचाने का यह अवसर हाथ लग गया। उन्होंने पञ्चायत जोड़ी और गोसाईं जी को बुला कर, उनसे पूँछा कि, तुमने इस हत्यारे को क्यो कर शुद्ध समझ लिया? इस प्रश्न के उत्तर में गोसाईं जी ने कहा—"तुम लोगों ने पुस्तकें पढ़ पढ़ कर धूल फाँका है, किन्तु राम नाम का माहात्म्य पढ़कर भी उसकी कुछ महिमा नहीं जान पायी। अच्छा, अब जिस प्रकार तुम्हें प्रतीति हो वह कहो।" तब तो उन ब्राह्मणों ने कहा कि, यदि इसके हाथ का रखा हुआ अन्न विश्वनाथ का नाँदिया खा ले, तो हम समझें कि, इसकी हत्या छूट गयी।

तुलसीदास जी अपने हाथ से रसोई बना कर, भिखमंगे के हाथों उस रसोई को विश्वनाथ जी के मन्दिर में ले गये। कहा जाता है, ज्यों ही वह रसोई नाँदिया के मुख से लगायी गयी; त्यों ही वह उसे झट खा गया। तब तो वे ब्राह्मण बहुत लज्जित हुए।

---

* परम आनन्द स्वरूप पत्रों से सुशोभित और कविता रूपी मञ्जरी से युक्त तथा राम रूपी भ्रमर से अलकृत, यह (अर्थात् तुलसीदास) तुलसी का वृक्ष है।

तुलसीदास जी श्रीराम नाम का अनुष्ठान किया करते थे। सचमुच वे श्रीराम जी के अनन्य भक्त थे। कहा जाता है, एक वार एक कनफटा साधु "अलख अलख" चिल्लाता उनके आवास-स्थान के पास हो कर निकला। गोस्वामी जी ने उसे रोक कर, उससे कहा :—

दोहा

"हम लख हमहिं हमार लख, हम हमार के बीच।
तुलसी अलखहिं का लखै, रामनाम जपु नीच॥"

कहते हैं, इस दोहे को सुन, वह कनफटा लज्जित हो, गोसाईं जी के चरणों पर गिर पड़ा और उस दिन से उसने "अलख अलख" चिल्लाना बन्द कर दिया।

उस समय के काशीवासियों ने तुलसीदास जी की सिद्धाई के और भी अनेक चमत्कार देखे थे। सचमुच वे रामनाम की आराधना करते करते सिद्ध पुरुष हो गये थे।

कहा जाता है, तुलसीदास की अकबर के अर्थसचिव खान-खाना अबदुलरहीम से बड़ी मैत्री थी। एक दिन गोसाईं जी ने उनके पास यह समस्या लिख कर भेजी :—

"सुरतिय, नरतिय, नागतिय सह वेदन सब कोय।"*

इसकी पूर्ति अबदुलरहीम ने यों की :—

"गर्भ लिये हुलसी फिरैं, जो तुलसी सो सुत होय।" †

---

* अर्थात् क्या देवियाँ, क्या स्त्रियाँ, क्या नागिनें, प्रसववेदना सब ही को सहनी पड़ती है।

† अर्थात् यदि तुलसी सा पुत्र हो तो, वे प्रसन्नतापूर्वक उस गर्भ को धारण करती हैं।

धीरे धीरे तुलसीदास जी की सिद्धाई का समाचार अकबर के कानों तक पहुँचा। उसने अपने मंत्री को उनके लाने के लिये भेजा। तुलसीदास जी जब उसके दरबार में उपस्थित हुए, तब उसने उनसे कोई चमत्कार दिखाने का आग्रह किया। इस पर तुलसीदास जी ने कहा—"बाबा! मैं चमत्कार तो जानता नहीं। मैं तो श्रीराम का नाम जानता हूँ।" तब बादशाह बोला—"अच्छा, तो श्रीरामचन्द्र जी ही को दिखलाओ।"

यह कह कर उसने उनको जेलखाने में डाल दिया। उस समय गोसाईं जी ने दुःखी हो, हनुमान जी को उत्तेजित करने के लिये पद* बनाये। उन पदों के पूरा होते ही लाखों बन्दर

---

*जो स्तुति के पद तुलसीदास जी ने इस समय बनाए थे वे ये हैं:—

पद

कानन भूधर वारि बयारि दवा विष ज्वाल महा अरि घेरे।
संकट कोटि परो तुलसी तहं मातु पिता सुत बंधु न नेरे॥
राखहिं राम कृपा करि कै हनुमान से पायक हैं जिन केरे।
नाक रसातल भूतल में रघुनायक एक सहायक मेरे॥

तोहि न ऐसी बूझिए हनुमान हठीले।
साहेब काहु न राम से तुमसे न वसीले॥
तेरे देखत सिंह के सुत मेढुक लीले।
जानत हूँ कलि तेरेऊ मनो गुनगन कीले॥
हाँक सुनत दसकंध के भए बंधन ढीले।
सो बल गयो कि भए अब कछु गर्वगहीले॥
सेवक को परदा फटे तूं समरथसीले।
अधिक आपुतें आपुने सनमान सहीले॥
सांसति तुलसीदास की देखि सुजस तूंही ले।
तिहूँ काल तिनको भलो जो राम रंगीले॥

× × × × ×

दिल्ली के दुर्ग पर चढ़ गये और उपद्रव करने लगे। किले के कंगूरे तोड़ वे महल में घुस गये। सारा नगर बन्दरों के अत्याचारों एवं उपद्रवों से त्रस्त हो गया। तब तो अकबर बहुत घबराया। उसको घबराया हुआ देख, उसके कतिपय शुभचिन्तकों ने उसे समझा कर कहा कि. आपने जिनको कैद किया है उनके हनुमान जी इष्टदेव हैं। यदि आप उन्हें छोड़ न देंगे, तो ये बन्दर कोई बड़ा उपद्रव खड़ा कर देंगे। इस लिये आप उन साधु को अभी छोड़ दें। अकबर ने ऐसा ही किया और गोसाईं जी से हाथ जोड़ अपना अपराध क्षमा कराया। सरल और उदार हृदय तुलसीदास ने उसका अपराध क्षमा कर दिया और कहा "तू श्रीरामचन्द्र जी को देखना चाहता था सो उन्होने पहले अपनी सेना भेजी है। वे स्वयं भी आते ही होंगे तू देख लेना।" यह सुन अकबर बहुत लज्जित हुआ और अनेक बहुमूल्य वस्तुएँ गोसाईं जी को भेंट कीं। उस भेंट को अस्वीकार कर तुलसीदास ने उससे कहा—"अब इस नगर में श्रीरघुनाथ जी का झंडा गड़ गया। तू अब कहीं अन्यत्र नया स्थान बना कर रह।" कहते हैं, अकबर ने पुरानी दिल्ली छोड़ शाहजहाँनाबाद नाम का नया नगर बसाया और वहाँ जाकर वह रहने लगा।

दिल्ली से लौटते हुए तुलसीदास वृन्दावन गये। कहा जाता है, उस समय वृन्दावन में महात्मा नाभादास जी विद्यमान थे। तुलसी दास जी उनसे मिले। नाभादास जी ने उनका बड़ा आदर सत्कार किया और उनकी प्रशंसा करते हुए एक छप्पय बना डाला। वह छप्पय यह है :—

" त्रेता काव्य निबंध करी सत कोटि रमायन।
इक अच्छर उद्धरै ब्रह्म-हत्यादि-परायन॥

अब भगतन सुख दैन, बहुरि लीला बिस्तारी।
रामचरन रस मत्त रटत अहनिशि व्रतधारी॥
संसार अपार के पार कों, सुगम रूप नौका लयो।
कलि कुटिल जीव निस्तारहित, वाल्मीकि तुलसी भयो॥"

वृन्दावन श्रीराधाकृष्ण की क्रीड़ास्थली है। यहाँ के लोग "श्री-राधाकृष्ण! श्रीराधाकृष्ण!!" ही रटा करते हैं। उनकी इस रटना को सुन, तुलसीदास जी ने एक दोहा रचा था। वह यह है —

"राधाकृष्ण सबै कहैं, आक ढाक अरु कैर।
तुलसी या ब्रज में कहा. सीयाराम सौं बैर॥"

कहा जाता है, एक दिन तुलसीदास जी को एक वैष्णव यह कह कर कि, "चलिये आपको श्रीसीताराम जी के दर्शन करावें, श्रीमदनगोपाल जी के मन्दिर में ले गया।" तब श्रीमदनगोपाल जी के हाथ में बंशी देख गोसाईं जी ने यह दोहा पढ़ा —

दोहा

"कहा कहौं छवि आज की, भले बने हो नाथ।
तुलसी मस्तक तब नवै धनुष बान लेउ हाथ॥"

कहा जाता है कि, श्रीमदनगोपाल जी ने बंशी छिपा कर धनुष बाण ले लिया। तब गोसाईं जी ने यह दोहा पढ़ा :—

दोहा

"क्रीट मुकुट माथे धरयो, धनुष बान लिय हाथ।
तुलसी निज जन कारने, नाथ भये रघुनाथ॥"

वृन्दावन से गोसाईं जी काशी लौट गये और वहीं सं० १६८० वि० के श्रावण मास की शुक्ला सप्तमी को उन्होंने शरीर छोड़ा। उनका अन्तिम दोहा यह है :—

दोहा

" रामनाम जस बरनि कै, भयो चहत अब मौन ।
तुलसी के मुख दीजिये, अब ही तुलसी सोन ॥ "

गोसाईं तुलसीदास जी के बनाये निम्न लिखित १२ ग्रंथ प्रसिद्ध हैं ; छः इनमें बडे और छः छोटे हैं ।

बडे ग्रंथो के नाम ये हैः—

(१) दोहावली (२) कवित्त रामायण (३) गीतावली (४) रामाज्ञा (५) विनय-पत्रिका (६) राम-चरित-मानस ।

छोटे ग्रंथों के नाम ये हैं :—

(१) रामललानहछू (२) वैराग्यसंदीपनी (३) बरवै रामायण (४) पार्वती-मङ्गल (५) जानकी-मङ्गल (६) कृष्ण गीतावली ।

रामायण की कथा

प्राचीन काल में दशरथ नामक एक राजा हो गये हैं, जिनके राज्य की राजधानी सुप्रसिद्ध अयोध्या नगरी थी। उनके तीन रानियाँ थीं, जिनके नाम थे कौशल्या, कैकेयी और सुमित्रा। वय अधिक हो जाने पर भी जब महाराज दशरथ के कोई सन्तान न हुआ, तब उनको इस बात की चिन्ता उत्पन्न हुई कि, उनके परलोक सिधारने पर उनके विशाल साम्राज्य का अधिकारी कौन होगा। अन्त में बहुत सोचने विचारने के अनन्तर, उन्होंने अपने कुल-पुरोहित वशिष्ठ और मन्त्रियों के परामर्शानुसार पुत्र प्राप्त करने के उद्देश्य से एक महायज्ञ किया। यज्ञ समाप्त होने पर महाराज ने तीनों रानियों को चरु बाँट दिया। फल यह हुआ कि, कुछ ही दिनों बाद उस यज्ञचरु के प्रभाव से महाराज को सुन्दर चार पुत्रों के पिता बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

उनके चारों पुत्रों के नाम वयःक्रम से श्रीरामचन्द्र, श्रीभरत, श्रीलक्ष्मण और श्रीशत्रुघ्न थे। इन चारो भाइयो में परस्पर बड़ा सद्भाव था और एक भाई दूसरे भाई से बड़ा प्रेम रखता था, पर श्रीरामचन्द्र का श्रीलक्ष्मण के ऊपर और श्रीभरत का श्रीशत्रुघ्न के ऊपर विशेष अनुराग था।

इन चारों भाइयों को लड़कपन ही से वीरोचित एवं अनेक विषयों की ऐसी सुन्दर शिक्षा मिली कि, वे कुछ ही

दिनों में प्रसिद्ध रणपण्डित, नीतिकुशल एवं विद्वान हो गये।

किन्तु श्रीरामचन्द्र चारों भाइयों के बीच जैसे अवस्था में बड़े थे वैसे ही वे गुणों में भी बड़े थे। उनके गुणो पर तथा उनकी प्रकृति पर अयोध्यावासी मोहित हो गये थे।

इतने में एक दिन विश्वामित्र जी महाराज दशरथ की सभा में पहुँचे। उनको आते देख महाराज ने उनका विधिपूर्वक आदर सत्कार किया और उन्हें एक उत्तम आसन पर बैठाया। फिर हाथ जोड़ कर बोले—"मुनिवर! कहिये क्या आज्ञा है? दास को आज्ञा दे कर कृतकृत्य कीजिये।" इसके उत्तर में विश्वामित्र ने कहा—"हम एक बड़े सङ्कट में पड़, आपके पास आये हैं। हम जब यज्ञ करने बैठते हैं, तभी मारीच और सुबाहु नाम के दो राक्षस यज्ञ-स्थान में पहुँच कर और हाड़ माँस बखेर कर, हमारे यज्ञ को नष्ट भ्रष्ट कर डाला करते हैं। अतः कुछ दिनों के लिये आप श्रीरामचन्द्र को हमारे साथ भेज दें तो वह हमारे यज्ञ के विघ्नों को दूर कर दें।"

यह सुन कर, पुत्रवात्सल्य में बँधे महाराज दशरथ बड़े असमंजस में पड़े, किन्तु कुलगुरु वशिष्ठ जी के अनुरोध करने पर उन्होने विश्वामित्र जी के साथ, अपने प्राणोपमपुत्र श्रीरामचन्द्र और लक्ष्मण को भेज दिया।

महर्षि विश्वामित्र के साथ दोनो भाई सरयू नदी पार कर उस भयानक वन में पहुँचे, जिसमें ताड़का नाम की एक राक्षसी रहा करती थी। ताड़का ने दोनों भाइयो पर आक्रमण किया। तब श्रीरामचन्द्र ने बाण मार कर, उसे दूसरे लोक को भेज दिया। तदनन्तर विश्वामित्र अपने आश्रम में पहुँचे। वहाँ अन्य अनेक तपस्वी ऋषि भी रहते थे। वे इन दोनो राजकुमारो को देख, बहुत

प्रसन्न हुए। विश्वामित्र ने अपना यज्ञ आरम्भ किया। यज्ञ आरम्भ करते ही वे दोनों राक्षस आ पहुँचे और पूर्ववत् उपद्रव मचाने लगे। तब श्रीरामचन्द्र जी ने मारीच की छाती में ऐसे ज़ोर से एक बाण मारा कि वह चक्कर खाता खाता समुद्र किनारे जा गिरा। रहा सुबाहु, सो वह बाण के लगते ही मर कर वहीं गिर पड़ा।

इस प्रकार विश्वामित्र का यज्ञ निर्विघ्न पूरा करा दोनों, भाई विश्वामित्र के साथ महाराज जनक का धनुष-यज्ञ देखने मिथिला-पुरी में पहुँचे। वहाँ महाराज जनक ने उनका बड़ा आदर सत्कार किया। विश्वामित्र के मुख से दोनों राजकुमारों का परिचय पाकर. महाराज जनक अति सन्तुष्ट हुए।

महाराज जनक के एक कन्या थी। उस कन्या का नाम था सीता। इन्हीं महाराज जनक के घर में एक बड़ा भारी धनुष शिव जी का दिया हुआ रक्खा था। महाराज ने प्रतिज्ञा की थी कि, जो कोई उस धनुष को झुका कर उस पर रोदा चढ़ा देगा, उसको वे सीता व्याह देंगे। इस प्रतिज्ञा की बात सुन, महाराज जनक की राजधानी में बड़े बड़े प्रसिद्ध वीर उस धनुष पर रोदा चढ़ाने के लिये एकत्र हुए। किन्तु उस धनुष पर रोदा चढ़ाना तो एक ओर रहा, वे उसे (जिस जगह वह रखा था उस जगह से) टस से मस भी न कर सके। तब विश्वामित्र जी की आज्ञा से श्रीराम-चन्द्र जी ने उस प्रकाण्ड धनुष को गेंद की तरह उठा कर, ज्यों ही उसको लचाया कि, उस पर रोदा चढ़ावें, त्यो ही वह चटाक से टूट गया। यह देख, सब लोग विस्मित हुए और महाराज जनक जो पहले हताश हो चुके थे, अब बहुत ही प्रसन्न हुए। उन्होंने अपनी पूर्वप्रतिज्ञा के अनुसार सीता जी का विवाह श्रीरामचन्द्र जी के साथ कर दिया। दोनों पक्षवाले लोकविश्रुत नरपति थे,

अतः श्रीरामचन्द्र जी का विवाह बडे समारोह और धूमधाम के साथ हुआ।

इस धूमधाम में एक छोटा सा विघ्न भी आ उपस्थित हुआ। परशुराम जी भूतनाथ महादेव के परमभक्त थे। अतः जब उन्होंने सुना कि, शिव जी का धनुष तोड़ डाला गया है, तब वे अति क्रुद्ध हो, जनक के पास गये; किन्तु श्रीरामचन्द्र जी ने उनको समझा कर शान्त कर दिया और वे श्रीरामचन्द्र जी की प्रशंसा करते हुए तपावन को लौट गये।

वह विवाह केवल श्रीरामचन्द्र जी ही का न था, किन्तु महाराज जनक ने अपनी तीन भतीजियो का भी विवाह श्रीभरत, श्रीलक्ष्मण और श्रीशत्रुघ्न के साथ कर दिया था। महाराज दशरथ चारो राजकुमारों को ब्याह कर, बहुओ समेत अयोध्या में आनन्द-पूर्वक रहने लगे।

कालान्तर में महाराज दशरथ ने पुरवासियों और मंत्रिमण्डल से परामर्श कर, श्रीरामचन्द्र जी को युवराज-पद पर प्रतिष्ठित करना निश्चित किया और तदनुसार कार्य भी आरम्भ कर दिया; किन्तु यह बात, कैकेयी की एक दासी को जिसका नाम मंथरा था, बड़ी बुरी लगी और उसने जा, भरत की जननी कैकेयी को ऐसी पट्टी पढ़ाई कि, कैकेयी पर मंथरा का रंग चढ़ गया तथा उसने रंग में भङ्ग डाला। महाराज ने कैकेयी को किसी समय प्रसन्न हो दो वर देने कहे थे। दासी की कुमंत्रणा में पड़, कैकेयी ने इस समय महाराज से उन दो वरो को माँगा। एक वर से तो चौदह वर्ष तक श्रीरामचन्द्र जी का वनवास और दूसरे से भरत को युव-राज-पद। महाराज दशरथ ने कैकेयी को अनेक प्रकार से समझाया बुझाया, प्रार्थना की, विनती की तथा धमकाया डराया भी, किन्तु कैकेयी ने किसी प्रकार भी अपना दुराग्रह न छोड़ा। तब विवश हो

सत्यपरायण महाराज दशरथ ने अपने सत्य की रक्षा के लिये प्राणों से बढ़कर, अपने प्रियपुत्र श्रीरामचन्द्र जी को वनवास की अनुमति दी। वनवास तो दिया; किन्तु वृद्ध महाराज के मन पर इस घटना का ऐसा भारी धक्का लगा कि वे अपने को न सम्हाल सके और इस, असार, संसार को छोड़ स्वर्गलोक के यात्री बने।

श्रीरामचन्द्र जी अपनी धर्मपत्नी जानकी जी और छोटे भाई श्रीलक्ष्मण जी के साथ वन को गये। अनेक नदों नदियों पहाड़ों और वनों को मझाते हुए, वे चित्रकूट में पहुँचे और वहाँ एक कुटी बना कर रहने लगे।

जिस समय अयोध्या में यह घटना हुई, उस समय श्रीभरत जी अपनी ननिहाल में थे। जब महाराज दशरथ ने शरीर त्यागा तब दूत भेज कर भरत बुलवाये गये। श्रीभरत जी अपने भाई श्रीशत्रुघ्न सहित अयोध्या में आये और उस शोच्यकाण्ड को देख, बड़े दुःखी हुए। पिता का और्द्धदेहिक-कृत्य पूरा कर, वे परिवार सहित चित्रकूट गये और श्रीरामचन्द्र जी को समझा बुझा कर अयोध्या को लौटा लाने के उद्योग में उन्होंने कोई बात उठा नहीं रखी; किन्तु पिता के सत्य की रक्षा के अनुरोध से श्रीरामचन्द्र जी ने भरत को समझा कर अयोध्या को भेजा और चौदह वर्ष के लिये अयोध्या का शासनभार श्रीभरत जी को सौंपा।

जब श्रीरामचन्द्र जी ने देखा कि, अयोध्यावासी प्रायः चित्रकूट में आते जाते बने रहते हैं और उनके ऐसा करने से चित्रकूट-निवासी तपस्वियों के तप में बाधा पड़ती है; तब वे उस स्थान को छोड़ दण्डकारण्य में कुटी बनवा रहने लगे। वहाँ पर यद्यपि अयोध्यावासियों का आना जाना नहीं होता था, तथापि इस दुर्गम वन में भी वे निर्विघ्न न रह सके। उस वन में लङ्का के तत्कालीन राजा रावण की एक चौकी थी और वहीं उसकी बहिन सूपनखा भी रहती थी। एक दिन यह काम-चारिणी राक्षसी

श्रीरामचन्द्र जी के पास गयी और निर्लज्ज हो उसने उनके सामने उनके साथ अपना विवाह करने का प्रस्ताव छेड़ा। श्रीरामचन्द्र जी ने उसके इस अनुचित प्रस्ताव को पहले तो हँसी में टाल देना चाहा, पर जब देखा कि, उस राक्षसी की उद्दण्डता बढ़ती ही जाती है; तब लक्ष्मण द्वारा उसके नाक कान कटवा कर, उसे उचित दण्ड दिया। वह पापिन अपनी करतूत पर पछताई तो नहीं, प्रत्युत उसने उस चौकी के अधिष्ठाता खर को बहका कर और श्रीरामचन्द्र जी से उसे सेना सहित लड़वा कर, मरवा डाला। इससे उस राक्षसी की जलन घटने के बदले बढ़ी और उसने लङ्का में पहुँच रावण को उभाड़ा। जो पापी होते हैं वे बली हो सकते है किन्तु उनमें साहस कम होता है। अतः रावण का यह तो साहस न हुआ कि, वह श्रीरामचद्र जी के रहते, उनका किसी प्रकार से कुछ अनिष्ट कर सके; किन्तु वह मारीच को धमका और उसकी सहायता से श्रीरामचन्द्र और श्रीलक्ष्मण को उनके आश्रम से दूर हटवा कर, अकेले में सीता को चुरा कर भाग गया। भागते समय महाराज दशरथ के मित्र जटायु नामक एक गीध ने रावण से लड़ कर, जानकी को छुड़ाना चाहा, पर इस प्रयास में उस गीध को रावण के हाथ से अपने प्राण गँवाने पड़े।

आश्रम में लौट कर, जब श्रीरामचन्द्र ने सीता को न देखा तब वे दुःखी हो, अपने अनुज सहित उस वन में जानकी को खोजते हुए आगे बढ़े। घूमते फिरते और वन के उपद्रवो का सामना करते, वे ऋष्यमूक पर्वत के निकट जा निकले। वहाँ पर वानरराज सुग्रीव से हठात् उनकी जान पहचान हो गयी और कुछ ही क्षणो तक साथ रहने से उन दोनो में पक्की मित्रता हो गई। सुग्रीव महावीर वालि का छोटा भाई था। वालि ने सुग्रीव को बलात् राज्यच्युत कर दिया था। श्रीराम ने उसे मार सुग्रीव को फिर से राजसिंहासन पर बैठाया। तब सुग्रीव ने अपने सैनिक वानरों

द्वारा जानकी जी को ढूँढ़वाया। अन्त में हनुमान नामक सुग्रीव के मंत्री ने जानकी जी को लङ्का में ढूंढ निकाला। लङ्का में वन्दी दशा में जानकी को देख, हनुमान बहुत दुःखी हुए। यहाँ तक कि, उनका दुःख सीमा को अतिक्रम कर क्रोध में परिणत हो गया। क्रोध में भर, उन्होंने रावण की अशोकवाटिका उजाड़ डाली और जिन राक्षसों ने उन्हें ऐसा करने से रोका, उनको मार डाला। अन्त मे रावण के ज्येष्ठपुत्र इन्द्रजीत अर्थात् मेघनाद ने ब्रह्मास्त्र से हनुमान को पकड़ा। रावण ने हनुमान पर क्रुद्ध हो, उनकी पूँछ में आग लगवाई। इस आग से हनुमान ने लङ्का के अनेक घर भस्म कर डाले। फिर वहाँ से लौट, उन्होंने श्रीरामचन्द्र जी को जानकी जी का सँदेसा सुनाया।

श्रीरामचन्द्र जी ने शुभ मुहूर्त्त में अपने मित्र सुग्रीव की सेना के साथ लङ्का पर आक्रमण करने के लिये यात्रा की। समुद्र के तट पर पहुँच, श्रीरामचन्द्र जी ने डेरा डाला और नल एवं नील ने लङ्का तक समुद्र पर पुल बाँधने का कार्य आरम्भ किया इतने में रावण के अन्याय और अत्याचार से दुःखी हो, उसका छोटा भाई विभीषण श्रीरामचन्द्र जी की सेना में आ मिला। श्रीरामचन्द्र जी ने उस पर कृपा कर और उसको अपना अनुगत बनाये रखने के लिये, उसे 'लंकेश" कह कर संबोधित किया।

समुद्र का पुल बँध जाने पर श्रीरामचन्द्र जी ने सेना सहित समुद्र पार कर लङ्का पर चढ़ाई की। इस चढ़ाई में दोनों दलों के बहुत से सैनिक मारे गये। किन्तु विशेष हानि रावण ही की हुई। यहाँ तक कि रावण, अपने भाई, पुत्र, पौत्र तथा परिवार के अन्य लोगों सहित इस युद्ध में मारा गया, तब श्रीरामचन्द्र जी ने विभीषण को लङ्का की राजगद्दी पर वैठाया।

जानकी जी हनुमान के मुख से श्रीरामचन्द्र जी के विजय

का हर्षप्रद संवाद सुन अत्यन्त सुखी हुई और पालकी में बैठ हनुमान के साथ श्रीरामचन्द्रजी के समीप गयीं। किन्तु लोकापवाद के भय से श्रीरामचन्द्र जी ने सीता को अङ्गीकार न किया। अन्त में एक बडा भारी लकडियों का ढेर लगाया गया और उसमें आग लगा दी गई। जब लकड़ियाँ जल उठीं तब सीता जी ने अग्नि में प्रवेश किया। लकड़ियाँ सब जल गईं, पर सीता जी के किसी अङ्ग पर जलने का एक दाग़ तक नहीं लगा। यह देख सब लोग उनके सतीत्व की प्रशंसा करने लगे। इस प्रकार अग्निपरीक्षा में उत्तीर्ण होने पर, सीता को श्रीरामचन्द्र जी ने अङ्गीकार किया।

तदन्तर पुष्पक विमान में बैठ श्रीरामचन्द्र जी अपने छोटे भाई लक्ष्मण, अपनी भार्या जानकी, अपने मित्र सुग्रीव, विभीषण आदि को सथा ले, लौट कर अयोध्या पहुँचे।

चौदह वर्ष बाद श्रीभरत अपने बड़े भाई श्रीरामचन्द्र जी तथा अपने छोटे भाई श्रीलक्ष्मण एवं भोजाई सीता को देख, बडे प्रसन्न हुए और अयोध्या का राज्य श्रीरामचन्द्र जी को सौंप, वैसे ही प्रसन्न और निश्चिन्त हुए, जैसे कोई किसी की धरोहर ज्यों की त्यो उसके धनी को लौटा कर, प्रसन्न होता है।

अयोध्या में बड़ी धूमधाम से श्रीरामचन्द्र जी का पट्टाभिषेक हुआ। इस उत्सव के समाप्त होने पर सुग्रीव विभीषण आदि को श्रीराम जी ने अयोध्या से विदा किया।

अयोध्या के राजसिंहासन पर बैठ श्रीरामचन्द्र जी ने दस हज़ार वर्षों तक राज्य किया और अपने राजत्व काल में अनेक यज्ञ एवं विविध धर्मानुष्ठान किये। तदनन्तर वे अपने ज्येष्ठ राजकुमार को अयोध्या का राज्य सौंप स्वयं साकेत लोक को चले गये।

श्रीमङ्गलमूर्तयेनमः

तुलसी संग्रह

मङ्गलाचरण

जेहि सुमिरत सिधि होइ
गननायक करि-बर-बदन ।
करउ अनुग्रह सोइ
बुद्धिरासि सुभ-गुन-सदन ॥
मूक होइ बाचाल
पंगु चढ़इ गिरवर गहन ।
जासु कृपा सो दयाल
द्रवउ सकल-कलि-मल-दहन ॥
नील सरोरुह स्याम
तरन अरुन बारिज नयन ।
करउ सो मम उर धाम
सदा छीर-सागर-सयन ॥

मानसरोवर

[तुलसीदासजी ने अपनी रामायण का नाम मानस रखा है। मानस का अर्थ है "मानसरोवर" अतः इस रामायण* की उपमा गोस्वामीजी ने मानसरोवर से दी है। उस सरोवर का एक रूपक बाँधा गया। वही रूपक मूलग्रंथ से नीचे उद्धृत किया जाता है।]

चौपाई

सुमति भूमि थल हृदय अगाधू। वेद पुरान उदधि घन साधू॥
बरषहिँ राम सुजस बर बारी। मधुर मनोहर मङ्गलकारी॥
लीला सगुन जो कहहिँ बखानी। सोइ स्वच्छता करइ मल हानी॥
प्रेम भगति जो बरनि न जाई। सोइ मधुरता सुसीतलताई॥
सो जल सुकृत सालि हित होइ। रामभगत जन जीवन सोई॥
मेधा महिगत सो जल पावन। सकिलि श्रवनमग चलेउ सुहावन॥
भरेउ सुमानस सुथल थिराना। सुखद सीत रुचि चारु चिराना॥

दोहा

सुठि सुन्दर सम्बाद बर, बिरचे बुद्धि बिचारु।
तेइ एहि पावन सुभग सर, घाट मनोहर चारु॥

---

* रामायण शब्द पुलिङ्ग है, किन्तु हिन्दीभाषा में इसका प्रयोग स्त्रीलिङ्ग मान कर ही किया जाता है।

चौपाई

सप्त प्रवन्ध सुभग सोपाना। ध्यान नयन निरषत मनमाना॥
रघुपतिमहिमा अगुन अवाधा। वरनव सोइ वर वारि अगाधा॥
रामसीय जस सलिल सुधासम। उपमा बीचि विलास मनोरम॥
पुरइनि सघन चारु चौपाई। जुगुति मंजु मनि सीप सुहाई॥
छन्द सोरठा सुन्दर दोहा। सोइ वहुरंग कमलकुल सोहा॥
अरथ अनूप सुभाव सुभासा। सोइ पराग मकरंद सुवासा॥
सुकृत पुञ्ज मंजुल अलिमाला। ज्ञान विराग विचार-मराला॥
धुनि अवरेव कवित गुन जाती। मीन मनोहर ते वहु भाँती॥
अरथ धरम कामादिक चारी। कहव ग्यान विग्यान विचारी॥
नव रस जप तप जोग विरागा। ते सव जलचर चारु तड़ागा॥
सुकृती साधु नाम गुन गाना। ते विचित्र जल विहग समाना॥
संत सभा चहुँ दिसि अँवराई। श्रद्धा रितु वसंत सम गाई॥
भगति निरूपन विविध विधाना। क्षमा दया द्रुम लता विताना॥
समजम नियम फूलफल ग्याना। हरिपद रस वर वेद वषाना॥
अउरउ कथा अनेक प्रसंगा। तेइ सुक पिक वहु वरन विहंगा॥

दोहा

पुलक वाटिका वाग वन, सुख सुविहग विहारु।
माली सुमन सनेह जल, सींचत लोचन चारु॥

चौपाई

अति खल जे विषई वक कागा। एहि सर निकट न जाहिं अभागा॥
संवुक भेक सेवार समाना। इहाँ न विषय कथा रस नाना॥
तेहि कारन आवत हिय हारे। कामी काक वलाक विचारे॥
आवत एहि सर अति कठिनाई। रामकृपा विनु आइ न जाई॥

कठिन कुसंग कुपंथ कराला। तिन्हके वचन वाघ हरि व्याला॥
गृहकारज नाना जंजाला। तेइ अति दुर्गम सैल विसाला॥
वन वहु विषम मोह मदमाना। नदी कुतर्क भयंकर नाना॥

दोहा

जे स्रद्धा संवल रहित, नहिं सन्तन्ह कर साथ।
तिन कहँ मानस अगम अति, जिनहिं न प्रिय रघुनाथ॥

चौपाई

जो करि कष्ट जाइ पुनि कोई। जातहि नींद जुड़ाई होई॥
जड़ता जाड़ विषम उर लागा। गयउ न मज्जन पाव अभागा॥
करि न जाइ सर मज्जन पाना। फिरि आवै समेत अभिमाना॥
जौं वहोरि कोउ पूछन आवा। सरनिन्दा करि ताहि बुझावा॥
सकल विघ्न व्यापहिं नहिं तेही। राम सुकृपा विलोकहिं जेही॥
सोइ सादरसर मज्जन करई। महाघोर त्रयताप न जरई॥
ते नर यह सर तजहि न काऊ। जिनके रामचरन भल भाऊ॥
जो नहाइ चह एहि सर भाई। सो सतसंग करउ मन लाई॥
अस मानस मानस चष चाही। भइ कवि बुद्धि विमल अवगाही॥
भयउ हृदय आनन्द उछाहू। उमगेउ प्रेम प्रमोद प्रवाहू॥
चली सुभग कविता सरितासी। राम विमल जसजल भरितासी॥
सरजू नाम सुमंगल मूला। लोक-वेद-मत मंजुल कूला॥
नदी पुनीत सुमानस नन्दिनि। कलिमलत्रिन तरुमूल निकंदिनि॥

दोहा

स्रोता त्रिविध समाज पुर, ग्राम नगर दुहुँकूल।
सन्तसभा अनुपम अवध, सकल सुमंगलमूल॥

चौपाई

राम भगति सुरसरितहि जाई। मिली सुकीरति सरजु सुहाई॥
सानुज राम-समर-जस पावन। मिलेउ महानद सोन सुहावन॥
जुग बिच भगति देव-धुनि-धारा। सोहति सहित सुबिरति बिचारा॥
त्रिविध-ताप - त्रासक तिमुहानी। रामसरूप सिन्धु समुहानी॥
मानस मूल मिली सुरसरिही। सुनत सुजनमन पावन करिही॥
बिच बिच कथा बिचित्र बिभागा। जनु सरितीर तीर बन बागा॥
उमा - महेस - बिवाह - बराती। ते जलचर अगनित बहु भाँती॥
रघुबर - जनम - अनँद - बधाई। भँवर तरग मनोहरताई॥

दोहा

बालचरित चहुँ बन्धु के, बनज बिपुल बहु रग।
नृप रानी परिजन सुकृत, मधुकर बारि बिहंग॥

चौपाई

सीयस्वयंबर कथा सुहाई। सरित सुहावनि सो छवि छाई॥
नदी नाव पटु प्रश्न अनेका। केवट कुसल उतर सबिवेका॥
सुनि अनुकथन परस्पर होई। पथिकसमाज सोह सरि सोई॥
घोर धार भृगुनाथ रिसानी। घाट सुबद्ध राम बर बानी॥
सानुज राम - बिवाह - उछाहू। सो सुभ उमँग सुखद सब काहू॥
कहत सुनत हरषहिँ पुलकाहीँ। ते सुकृती मन मुदित नहाहीँ॥
रामतिलक हित मङ्गलसाजा। परब जोग जनु जुरे समाजा॥
काई कुमति केकई केरी। परी जासु फल बिपति घनेरी॥

दोहा

समन अमित उतपात सब, भरतचरित जपजाग।
कलिअघ खलअवगुन कथन, ते जलमल बक काग॥

चौपाई

कीरति सरित छहूँ रितु रूरी । समय सुहावनि पावनि भूरी ॥
हिम-हिमसैल-सुता सिवब्याहू । सिसिर सुखद प्रभु-जनम-उछाहू॥
बरनब राम-विवाह - समाजू । सो मुदमङ्गलमय रितुराजू ॥
ग्रीषम दुसह राम बन गमनू । पन्थ कथा खर आतप पवनू ॥
बरषा घोर निसाचररारी । सुरकुल सालि सुमङ्गल कारी ॥
राम राजसुख विनय बड़ाई । बिसद सुखद सोइ सरद सुहाई ॥
सती सिरोमनि सिय-गुन-गाथा । सोई गुन अमल अनूपम पाथा ॥
भरतसुभाउ सुसीतलताई । सदा एकरस बरनि न जाई ॥

दोहा

अवलोकनि बोलनि मिलनि, प्रीति परसपर हास ।
भायप भलि चहुँ बन्धु की, जल माधुरी सुवास ॥

चौपाई

राम सुपेमहि पोषत पानी । हरतसकलकलि-कलुष-गलानी ॥
भव स्रम सोषक तोषक तोषा । समन दुरित दुख दारिद दोषा ॥
काम कोह मद मोह नसावन । विमल विवेक विराग बढ़ावन ॥
सादर मज्जन पान किए तेँ । मिटहिँ पाप परिताप हिए तेँ ॥
जिन्ह एहि बारि न मानस धोए । ते कायर कलिकाल बिगोए ॥
त्रिषत निरखि रविकरभववारी । फिरिहहिँ मृगजिमिजीव दुखारी॥

दोहा

मति अनुहारि सुवारि गुन, गन गनि मनअन्हवाइ ।
सुमिरि भवानी संकरहि, कह कवि कथा सुहाइ ॥

स्वायंभूमनु और सतरूपा

[इस कथा में महाराज दशरथ के पूर्वजन्म का वृत्तान्त है। स्वायंभूमनु ने कठिन तपस्या कर भगवान को प्रसन्न किया और उनसे यह वर माँगा कि, अगले जन्म में वे उनके पुत्र हों। उन्हींकी कथा नीचे लिखी गयी है।]

चौपाई

स्वायंभूमनु अरु सतरूपा। जिन्हतें भइ नरसृष्टि अनूपा॥
दम्पति धरम आचरन नीका। अजहुँ गाव स्रुति जिन्हकै लीका॥
नृप उत्तानपाद सुत तासू। ध्रुव हरिभगत भयउ सुत जासू॥
लघुसुत नाम प्रियव्रत ताही। बेद पुरान प्रसंसहिं जाही॥
देवहूति पुनि तासु कुमारी। जो मुनि कर्दम कै प्रिय नारी॥
आदि देव प्रभु दीनदयाला। जठर धरेउ जेहि कपिल कृपाला॥
सांख्यसास्त्र जिन्ह प्रगट बखाना। तत्त्व बिचार निपुन भगवाना॥
तेहि मनु राज कीन्ह बहु काला। प्रभु आयसु सब बिधि प्रतिपाला॥

सोरठा

होय न बिषय बिराग, भवन बसत भा चौथपनु।
हृदय बहुत दुख लाग, जनम गयेउ हरिभगति बिनु॥

चौपाई

बरबस राज सुतहि तब दीन्हा। नारि समेत गवन बन कीन्हा॥
तीरथवर नैमिष बिख्याता। अति पुनीत साधक-सिधि-दाता॥

बसहिं तहाँ मुनि-सिद्ध-समाजा। तह हिय हरषि चलेउ मनुराजा॥
पंथ जात सोहहिँ मतिधीरा। ग्यान भगति जनु धरे सरीरा॥
पहुँचे जाइ धेनु-मति-तीरा। हरषि नहाने निरमल नीरा॥
आये मिलन सिद्ध मुनि ग्यानी। धरम धुरन्धर नृपरिषि जानी॥
जहँ जहँ तीरथ रहे सुहाये। मुनिन्ह सकल सादर करवाये॥
कृससरीर मुनिपट परिधाना। सत समाज नित सुनहिं पुराना॥

दोहा

द्वादस अक्षर मँत्र पुनि, जपहिं सहित अनुराग।
वासुदेव - पद - पंकरुह, दंपतिमन अति लाग॥

चौपाई

करहिं आहार साक फल कन्दा। सुमरहिँ ब्रह्म सच्चिदानन्दा॥
पुनि हरि हेतु करन तप लागे। बारिअधार मूलफल त्यागे॥
उर अभिलाष निरंतर होई। देखिय नयन परम प्रभु सोई॥
अगुन अखंड अनन्त अनादी। जेहि चिंतहिं परमारथवादी॥
नेति नेति जेहि वेद निरूपा। चिदानन्द निरुपाधि अनूपा॥
सम्भु विरंचि विष्णु भगवाना। उपजहिँ जासु अंस तें नाना॥
ऐसेउ प्रभु सेवकबस अहई। भगत हेतु लीला तनु गहई॥
जौ यहि वचन सत्य स्रुति भाषा। तौ हमार पूजिहि अभिलाषा॥

दोहा

एहि विधि बीते बरष षट सहस बारिआहार।
सवत सप्त सहस्र पुनि, रहे समीरअधार॥

चौपाई

बरष सहसदस त्यागेउ सोऊ। ठाढे रहे एकपग दोऊ॥
बिधि-हरि-हर तप देखि अपारा। मनु समीप आये बहु बारा॥

माँगहु बर बहु भाँति लोभाये। परम धीर नहिं चलहिं चलाये॥
अस्थिमात्र हुइ रहे सरीरा। तदपि मनाग मनहिँ नहिँ पीरा॥
प्रभु सर्वग्य दास निज जानी। गति अनन्य तापस नृप रानी॥
माँगु माँगु बर भइ नभबानी। परम गँभीर कृपामृत सानी॥
मृतकजिआवनि गिरा सुहाइ। स्रवनरन्ध्र होइ उर जब आई॥
हृष्ट पुष्ट तन भये सुहाये। मानहुँ अबहिं भवन तें आये॥

दोहा

स्रवन-सुधा-सम बचन सुनि, पुलक प्रफुल्लित गात।
बोले मनु करि दंडवत, प्रेम न हृदय समात॥

चौपाई

सुनु सेवक सुर-तरु सुरधेनू। बिधि-हरि-हर-बंदित-पद-रेनू॥
सेवत सुलभ सकल-सुख-दायक। प्रनतपाल सचराचर-नायक॥
जौं अनाथहित हम पर नेहू। तौ प्रसन्न होइ यह बर देहू॥
जो सरूप बस सिवमन माहीं। जेहि कारन मुनि जतन कराहीं॥
जो भुसुंडि-मन-मानस-हंसा। सगुन अगुन जेहि निगम प्रसंसा॥
देखहिँ हम सो रूप भरि लोचन। कृपा करहु प्रनतारति मोचन॥
दंपतिबचन परम प्रिय लागे। मृदुल बिनीत प्रेम-रस-पागे॥
भगत-बछल प्रभु कृपानिधाना। बिस्वबास प्रगटे भगवाना॥

दोहा

नीलसरोरुह नीलमनि, नील-नीर-धर-स्याम।
लाजहिं तनु सोभा निरखि, कोटि कोटि सत काम॥

चौपाई

सरद मयंक बदन छबिसींवा। चारु कपोल चिबुक दर ग्रीवाँ॥
अधर अरुन रद सुन्दर नासा। बिधु-कर-निकर-बिनिन्दक-हासा॥

नव - अंबुज -अंबक छवि नीकी । चितवनि ललित भावती जीकी ॥
भृकुटि मनोज-चाप-छवि-हारी । तिलक ललाटपटल दुतिकारी ॥
कुंडल मकर मुकुट सिर भ्राजा । कुटिल केस जनु मधुपसमाजा ॥
उर श्रीवत्स रुचिर वनमाला । पदिक हार भूषन मनिजाला ॥
केहरिकन्धर चारु जनेऊ । बाहुविभूषन सुन्दर तेऊ ॥
करि-कर-सरिस सुभग भुजदंडा । कटि निषंग कर सर कोदंडा ॥

दोहा

तड़ितविनिन्दक पीत पट, उदर रेख पर तीनि ।
नाभि मनोहर लेति जनु, जमुन भवँर छवि छीनि ॥

चौपाई

पदराजीव बरनि नहिँ जाहीं । मुनिमन मधुप बसहिँ जिन्ह माहीं ॥
वामभाग सोभति अनुकूला । आदिसक्ति छबिनिधि जगमूला ॥
जासु अंस उपजहिं गुनखानी । अगनित लच्छि उमा ब्रह्मानी ॥
भृकुटिविलास जासु जग होई । राम बामदिसि सीता सोई ॥
छविसमुद्र हरिरूप बिलोकी । एकटक रहे नयनपट रोकी ॥
चितवहिं सादर रूप अनूपा । तृप्ति न मानहिं मनु सतरूपा ॥
हरपविवस तनुदसा भुलानी । परे दंड इव गहि पद पानी ॥
सिर परसे प्रभु निज कर-कंजा । तुरत उठाये करुनापुंजा ॥

दोहा

बोले कृपानिधान पुनि, अति प्रसन्न मोहि जानि ।
माँगहु वर जोइ भाव मन, महादानि अनुमानि ॥

चौपाई

सुनि प्रभुवचन जोरि जुग पानी । धरि धीरज बोले मृदु बानी ॥
नाथ देखि पदकमल तुम्हारे । अब पूरे सब काम हमारे ॥

एक लालसा बड़ि उर माहीं। सुगम अगम कहि जाति सो नाहीं॥
तुम्हहिं देत अति सुगम गोसाईं। अगम लाग मोहिं निज कृपनाईं॥
जथा दरिद्र बिबुधतरु पाई। बहु संपति माँगत सकुचाई॥
तासु प्रभाउ जान नहिं सोई। तथा हृदय मम संसय होई॥
सो तुम्ह जानहु अंतरजामी। पुरवहु मोर मनोरथ स्वामी॥
'सकुच बिहाइ माँगु नृप मोही। मोरे नहिं अदेय कछु तोही॥

दोहा

दानिसिरोमनि कृपानिधि, नाथ कहउँ सतभाउ।
चहउँ तुम्हहिं समान सुत, प्रभु सन कवन दुराउ॥

चौपाई

देखि प्रीति सुनि बचन अमोले। एवमस्तु करुनानिधि बोले॥
आपु सरिस खोजउँ कहँ जाई। नृप तव तनय होब मैं आई॥
सतरूपहि बिलोकि करजोरे। देवि माँगु बरु जो रुचि तोरे॥
जो बरु नाथ चतुर नृप माँगा। सोइ कृपाल मोहि अति प्रियलागा॥
प्रभु परन्तु सुठि होति ढिठाई। जदपि भगत हित तुम्हहि सुहाई॥
तुम्ह ब्रह्मादिजनक जगस्वामी। ब्रह्म सकल -उर- अंतरजामी॥
अस समुझत मन संसय होई। कहा जो प्रभु प्रवान* पुनि सोई॥
जे निज भगत नाथ तव अहहीं। जो सुख पावहिं जो गतिलहहीं॥

दोहा

सोइ सुख सोइ गति सोइ भगति, सोइ निज चरन सनेहु।
सोइ बिबेक सोइ रहनि प्रभु, हमहिं कृपा करि देहु॥

---

* प्रवान—प्रमाण।

चौपाई

सुनि मृदु गूढ़ रुचिर बचरचना । कृपासिंधु बोले मृदुवचना ॥
जे कछु रुचि तुम्हरे मन माहीं । मैं सो दीन्ह सब संसय नाहीं ॥
मातु बिबेक अलौकिक तारे । कबहुँ न मिटिहि अनुग्रह मारे ॥
बन्दि चरन मनु कहेउ बहोरी । अउर एक बिनती प्रभु मोरी ॥
सुत बिषयिक तव पद रति होऊ । मोहि बड मूढ कहइ किन कोऊ ॥
मनिबिनुफनिजिमिजलबिनुमीना । ममजीवन तिमि तुमहि अधीना ॥
अस बरु माँगि चरन गहि रहेऊ । एवमस्तु करुना-निधि कहेऊ ॥
अब तुम्ह मम अनुसासन मानी । बसहु जाइ सुरपति रजधानी ॥

सोरठा

तहँ करि भोग बिलास तात गये कछु काल पुनि ।
होइहहु अवधभुआल, तव मैं होव तुम्हार सुत ॥

चौपाई

इच्छामय नरवेष सवाँरे होइहउँ प्रगट निकेत तुम्हारे ॥
असन्ह सहित देह धरि ताता । करिहउँ चरित भगत-सुख-दाता ॥
जेहि सुनि सादर नर बड़भागी । भव तरहहिँ ममता मद त्यागी ॥
आदिसक्ति जेहि जग उपजाया । सोउ अवतरिहि मोरि यह माया ॥
पुरउब मैं अभिलाष तुम्हारा । सत्य सत्य पन सत्य हमारा ॥
पुनि पुनि अस कहि कृपानिधाना । अंतरधान भये भगवाना ॥
दम्पति उर धरि भगति कृपाला । तेहि आस्रमनि बसे कछु काला ॥
समय पाइ तनु तजि अनयासा । जाय कीन्ह अमरावतिबासा ॥

प्रताप-भानु

[दशरथ के पूर्वजन्म का हाल जान लेने के बाद रावण के पूर्वजन्म का हाल जान लेना भी आवश्यक है। क्योंकि रामायण में वर्णित घटना का एक प्रधान कारण रावण ही है। इस कथा के पढ़ने से मालूम होगा कि, पूर्वजन्म में एक शत्रु के षड्यंत्र से उसने ब्राह्मणों को क्रुध कर दिया था और इसीसे वह शाप द्वारा राक्षस हुआ था।]

चौपाई

बिस्वबिदित एक कैकय देसू। सत्यकेतु तहँ बसइ नरेसू॥
धरमधुरंधर नीतिनिधाना। तेज प्रताप सील बलवाना॥
तेहि के भये जुगुलसुत बीरा। सब गुन-धाम महारन-धीरा।
राजधनी जो जेठ सुत आही। नाम प्रतापभानु अस ताही॥
अपर सुतहि अरिमर्दन नामा। भुजबल अतुल अचल संग्रामा॥
भाइहि भाइहि परम समीती। सकल दोष छल बरजित प्रीति॥
जेठे सुतहि राज नृप दीन्हा। हरिहित आप गवन बन कीन्हा॥

दोहा

जब प्रतापरबि भयेउ नृप, फिरी दोहाई देस।
प्रजा पाल अतिवेद विधि, कतहुँ नहीं अघलेस॥

चौपाई

नृप-हित-कारक सचिव सयाना। नाम धरमरुचि सुक्र समाना॥
सचिव सयान बन्धु बलबीरा। आपु प्रतापपुञ्ज रनधीरा॥

सेन संग चतुरंग अपारा। अमित सुभट सब समर जुझारा॥
सेन बिलोकि राउ हरषाना। अरु बाजे गहगहे निसाना॥
बिजय हेतु कटकई बनाई। सुदिन साधि नृप चलेउ बजाई॥
तहँ तहँ परी अनेक लराई। जीते सकल भूप बरिआई॥
सप्त द्वीप भुजबल बस कीन्हें। लेइ लेइ दंड छाडि नृप दीन्हें॥
सकल-अवनि-मंडल तेहि काला। एक प्रतापभानु महिपाला॥

दोहा

स्वबस बिस्व करि बाहुबल, निज पुर कीन्ह प्रवेसु।
अरथ-धरम-कामादि सुख, सेवइ समय नरेसु॥

चौपाई

भूप - प्रताप - भानु बल पाई। कामधेनु भइ भूमि सुहाई॥
सब-दुख-बरजित प्रजा सुखारी। धरमसील सुन्दर नर नारी॥
सचिव धरम रुचि हरि-पद-प्रीती। नृप-हित-हेतु सिखव नित नीति॥
गुरु सुर संत पितर महिदेवा। करइ सदा नृप सब कै सेवा॥
भूप धरम जे बेद बखाने। सकल करइ सादर सुख माने॥
दिन प्रति देइ बिबिध बिधि दाना। सुनइ सास्त्रबर बेद पुराना॥
नाना बापी कूप तडागा। सुमन बाटिका सुन्दर बागा॥
बिप्रभवन सुरभवन सुहाये। सब तीरथन्ह बिचित्र बनाये॥

दोहा

जहँ लगि कहे पुरान स्रुति, एक एक सब जाग।
बार सहस्र सहस्र नृप, किये सहित अनुराग॥

चौपाई

हृदय न कछु फल अनुसंधाना। भूप बिबेकी परम सुजाना॥
करइ जे धरम करम मन बानी। बासुदेव अरपित नृप ग्यानी॥

चढ़ि बरबाजि बार एक राजा। मृगया कर सब साजि समाजा॥
विंध्याचल गभीर बन गयऊ। मृग पुनीत बहु मारत भयऊ॥
फिरत बिपिन नृप दीख बराहू। जनु बन दुरेउ ससिहि ग्रसि राहू॥
बड विधु नहिं समात मुख माहीं। मनहुँ क्रोधबस उगिलत नाहीं॥
कोल-कराल-दशन छवि गाई। तनु बिसाल पीवर अधिकाई॥
घुरघुरात हय आरव पाये। चकित बिलोकत कान उठाये॥

दोहा

नील-महीधर-सिखर - सम, देखि विसाल बराहु।
चपरि चलेउ हय सुटुकि नृप, हाँकि न होइ निबाहु॥

चौपाई

आवत देखि अधिक रव बाजी। चलेउ बराह मरुतगति भाजी॥
तुरत कीन्ह नृप सरसंधाना। महि मिलि गयउ बिलोकत बाना॥
तकि तकि तीर महीस चलावा। करि छल सुअर शरीर बचावा॥
प्रकटत दुरत जाइ मृग भागा। रिसबस भूप चलेउ सँग लागा॥
गयउ दूरि घन गहन बराहू। जहँ नाहिँ न गज-बाजि-निबाहू॥
अति अगम्य बन बिपुल कलेसू। तदपि न मृगमग तजहि नरेसू॥
कोल बिलोकि भूप बड़ धीरा। भागि पैठि गिरिगुहा गँभीरा॥
अगम देखि नृप अति पछिताई। फिरेउ महावन परेउ भुलाई॥

दोहा

खेद खिन्न छुद्धित तृषित, राजा बाजि समेत।
खोजत व्याकुल सरित सर, जल बिनु भयउ अचेत॥

चौपाई

फिरत बिपिन आस्रम एक देखा। तहँ बस नृपति कपट मुनि बेषा॥
जासु देस नृप लीन्ह छुड़ाई। समर सेन तजि गयउ पराई॥

समय प्रतापभानु कर जानी। आपन अति असमय अनुमानी॥
गयउ न गृह मन बहुत गलानी। मिला न राजहि नृप अभिमानी॥
रिस उर मारि रंक जिमि राजा। विपिन बसइ तापस के साजा॥
तासु समीप गवन नृप कीन्हा। यह प्रतापरवि तेहि तब चीन्हा॥
राउ तृषित नहिं सो पहिचाना। देखि सुबेष महामुनि जाना॥
उतरि तुरग तें कीन्ह प्रनामा। परम चतुर न कहेउ निजनामा॥

दोहा

भूपति तृषित बिलोकि तेहि, सरवर दीन्ह देखाइ।
मज्जन पान समेत हय, कीन्ह नृपति हरषाइ॥

चौपाई

गै स्रम सकल सुखी नृप भयऊ। निजआस्रम तापस लेइ गयऊ॥
आसन दीन्ह अस्त रवि जानी। पुनि तापस बोलेउ मृदुबानी॥
को तुम्ह कस बन फिरहु अकेले। सुन्दर जुवा जीव परहेले॥
चक्रवर्ति के लच्छन तोरे। देखत दया लागि अति मोरे॥
नाम प्रतापभानु अवनीसा। तासु सचिव मैं सुनहु मुनीसा॥
फिरत अहेरे परेउँ भुलाई। बडे भाग देखेउँ पद आई॥
हम कहँ दुरलभ दरस तुम्हारा। जानत हौं कछु भल होनिहारा॥
कह मुनि तात भयउ अँधियारा। जोजन सत्तरि नगर तुम्हारा॥

दोहा

निसा घोर गंभीर बन, पंथ न सुनहु सुजान।
बसहु आजु अस जानि तुम्ह, जायहु होत बिहान॥
तुलसी जसि भवितव्यता, तैसी मिलइ सहाइ।
आपु न आवइ ताहि पहिं, ताहि तहाँ लेइ जाइ॥

चौपाई

भलेहि नाथ आयसु धरि सीसा । बाँधि तुरग तरु बैठि महीसा ॥
नृप बहु भाँति प्रसंसेउ ताही । चरन बंदि निज भाग्य सराही ॥
पुनि बोलेउ मृदुगिरा सुहाई । जानि पिता प्रभु करउँ ढिठाई ॥
मोहि मुनीस सुत सेवक जानी । नाथ नाम निज कहहु बखानी ॥
तेहि न जान नृप नृपहि सो जाना । भूप सुहृद सो कपट सयाना ॥
बैरी पुनि छत्री पुनि राजा । छल बल कीन्ह चहइ निज काजा ॥
समुझि राजसुख दुखित अराती । अवाँ अनल इव सुलगइ छाती ॥
सरल बचन नृप के सुनि काना । बयर सँभारि हृदय हरषाना ॥

दोहा

कपट बोरि बानी मृदुल, बोलेउ जुगुति समेत ।
नाम हमार भिखारि अब, निर्धन रहित निकेत ॥

चौपाई

कह नृप जे बिज्ञाननिधाना । तुम्ह सारिखे गलितअभिमाना ॥
रहहिं अपनपौ सदा दुराये । सब बिधि कुसल कुबेष बनाये ॥
तेहि तें कहहिं संत स्रुति टेरे । परम अकिंचन प्रिय हरि केरे ॥
तुम्ह सम अधन भिखारि अगेहा । होत बिरंचि सिवहि संदेहा ॥
जोऽसि सोऽसि तव चरन नमामी । मो पर कृपा करिय अब स्वामी ॥
सहज प्रीति भूपति कै देखी । आपु बिषय बिस्वास बिसेखी ॥
सब प्रकार राजहि अपनाई । बोलेउ अधिक सनेह जनाई ॥
सुनु सतिभाउ कहउँ महिपाला । इहाँ बसत बीते बहु काला ॥

दोहा

अब लगि मोहि न मिलेउ कोउ, मैं न जनावउँ काहु ।
लोकमान्यता अनल सम, कर तप कानन दाहु ॥

सोरठा

तुलसी देख सुवेखु, भूलहिं मूढ़ न चतुर नर।
सुन्दर केकिहि पेखु, वचन सुधासम असन अहि॥

चौपाई

ता तें गुपुत रहउँ जगमाहीं। हरि तजि किमपि प्रयोजन नाहीं॥
प्रभु जानत सब बिनहिं जनाये। कहहु कवन सिधि लोक रिझाये॥
तुम्ह सुचि सुमति परमप्रिय मोरे। प्रीति प्रतीति मोहि पर तोरे॥
अब जौं तात दुरावउँ तोही। दारुन दोष घटइ अति मोही॥
जिमि जिमि तापस कथइ उदासा। तिमि तिमि नृपहि उपज विस्वासा॥
देखा स्ववस कर्म-मन-बानी। तब बोला तापस बगध्यानी॥
नाम हमार एकतनु भाई। सुनि नृप बोलेउ पुनि सिरु नाई॥
कहहु नाम कर अरथ बखानी। मोहि सेवक अति आपन जानी॥

दोहा

आदि सृष्टि उपजी जबहि, तब उतपति भइ मोरि।
नाम एकतनु हेतु तेहि, देह न धरी बहोरि॥

चौपाई

जनि आचरजु करहु मन माहीं। सुत तप तें दुरलभ कछु नाहीं
तपबल तें जग सृजइ विधाता। तपबल विष्णु भये परित्राता॥
तपबल संभु करहिं संहारा। तप तें अगम न कछु संसार॥
भयउ नृपहिं सुनि अति अनुरागा। कथा पुरातन कहइ सो लागा॥
करम धरम इतिहास अनेका। करइ निरूपन बिरति बिवेका॥
उद्भव - पालन - प्रलय - कहानी। कहेसि अमित आचरज बखानी॥
सुनि महीप तापसबस भयऊ। आपन नाम कहन तब लयऊ॥
कह तापस नृप जानउँ तोही। कीन्हेउ कपट लागु भल मोही॥

सोरठा

सुनु महीस असि नीति, जहँ तहँ नाम न कहहि नृप ।
मोहि तोहि पर प्रीति, परम चतुरता निरखि तव ॥

चौपाई

नाम तुम्हार प्रतापदिनेसा । सत्यकेतु तव पिता नरेसा ॥
गुरुप्रसाद सब जानेउँ राजा । कहिय न आपन जानि अकाजा ॥
देखि तात तव सहज सुधाई । प्रीतिप्रतीति नीति निपुनाई ॥
उपजि परी ममता मन मोरे । कहउँ कथा निज पूछे तोरे ॥
अब प्रसन्न मैं संसय नाहीं । माँगु जो भूप भाव मन माहीं ॥
सुनि सुवचन भूपति हरषाना । गहि पद विनय कीन्ह विधि नाना ॥
कृपासिंधु मुनि दरसन तोरे । चारि पदारथ करतल मोरे ॥
प्रभुहिं तथापि प्रसन्न विलोकी । माँगि अगम वर होउँ असोकी ॥

दोहा

जरा मरन दुःख रहित तनु, समर जितइ जनि कोउ ।
एकछत्र रिपुहीन महि, राज कलप सत होउ ॥

चौपाई

कह तापस नृप ऐसेइ होऊ । कारन एक कठिन सुनु सोऊ ॥
कालउ तव पद नाइहि सीसा । एक विप्रकुल छाड़ि महीसा ॥
तपबल विप्र सदा बरिआरा । तिन्हके कोप न कोउ रखवारा ॥
जौं विप्रन्ह बस करहु नरेसा । तौ तव बस विधि विष्णु महेसा ॥
चल न ब्रह्मकुल सन बरियाई । सत्य कहउँ दोउ भुजा उठाई ।
विप्रसाप विनु सुनु महिपाला । तोर नास नहिं कवनेहु काला ॥
हरषेउ राउ वचन सुनि तासू । नाथ न होइ मोर अब नासू ॥
तव प्रसाद प्रभु कृपानिधाना । मो कहँ सरब काल कल्याना ॥

दोहा

एवमस्तु कहि कपटमुनि, बोला कुटिल बहोरि।
मिलब हमार भुलाब निज, कहहु तो हमहिं न खोरि॥

चौपाई

तातें मैं तोहि बरजौं राजा। कहे कथा तव परम अकाजा॥
छठे श्रवण यह परै कहानी। नास तुम्हार सत्य मम बानी॥
यह प्रगटे अथवा द्विजसापा। नास तोर सुनु भानुप्रतापा॥
आन उपाय निधन तव नाहीं। जौं हरि हर कोपहिं मनमाहीं॥
सत्य नाथ पद गहि नृप भाखा। द्विज गुरु कोप कहहु को राखा॥
राखइ गुरु जौं कोप बिधाता। गुरुबिरोध नहिं कोउ जगत्राता॥
जौं न चलब हम कहे तुम्हारे। होउ नास नहिं सोच हमारे॥
एकहि डर डरपत मन मोरा। प्रभु महिदेव साप अतिघोरा॥

दोहा

होहिं बिप्र बस कवन बिधि, कहहु कृपा करि सोउ।
तुम्ह तजि दीनदयाल निज, हितू न देखउ कोउ॥

चौपाई

सुनु नृपबिबिध जतन जगमाहीं। कष्टसाध्य पुनि होहिं कि नाहीं॥
अहइ एक अतिसुगम उपाई। तहाँ परन्तु एक कठिनाई॥
मम आधीन जुगुति नृप सोई। मोर जाब तव नगर न होई॥
आजु लगे अरु जब तें भयउँ। काहू के गृह ग्राम न गयऊँ॥
जौं न जाउँ तव होइ अकाजू। बना आइ असमंजस आजू॥
सुनि महीस बोले मृदु बानी। नाथ निगम असि नीति बखानी॥
बड़े सनेह लघुन्ह पर करहीं। गिरि निज सिरन्हि सदा तृनधरहीं॥
जलधि अगाध मौलि बहु फेनू। संतत धरनि धरत सिरु रेनू॥

दोहा

अस कहि गहे नरेस पद, स्वामी होहु कृपालु।
मोहि लागि दुख सहिय प्रभु, सज्जन दीनदयालु॥

चौपाई

जानि नृपहि आपन आधीना। बोला तापस कपटप्रवीना॥
सत्य कहउँ भूपति सुनु तोही। जग नाहिन दुर्लभ कछु मोही॥
अवसि काज मैं करिहउँ तोरा। मन तन बचन भगत तैं मोरा॥
जोग जुगुति तप मंत्र प्रभाऊ। फलइ तबहिं जब करिय दुराऊ॥
जौं नरेस मैं करउ रसोई। तुम्ह परुसहु मोहिं जान न कोई॥
अन्न सो जोइ जोइ भोजन करई। सोइ सोइ तव आयसु अनुसरई॥
पुनि तिन्ह के गृह जेवइ जोऊ। तव वश होइ भूप सुनु सोऊ॥
जाइ उपाय रचहु नृप एहू। सवत भरि संकलप करेहु॥

दोहा

नित नूतन द्विज सहस सत, बरेहु सहित परिवार।
मैं तुम्हरे संकलप लगि, दिनहिं करव जेवनार॥

चौपाई

एहि विधि भूप कष्ट अति थोरे। होइहहिं सकल विप्र बस तोरे॥
करहहिं विप्र होम मख सेवा। तेहि प्रसंग सहजहिं बस देवा॥
अउर एक तोहि कहउँ लखाऊ। मैं एहि वेष न आउब काऊ॥
तुम्हरे उपरोहित कहँ राया। हरि आनव मैं करि निज माया॥
तपबल तेहि करि आपु समाना। रखिहउँ इहाँ बरष परवाना॥
मैं धरि तासु वेष सुनु राजा। सब विधि तोर संवारब काजा॥
गइ निसि बहुत सयन अब कीजे। मोहि तोहि भूप भेंट दिन तीजे॥
मैं तपबल तोहि तुरग समेता। पहुँचइहउँ सोवतहिं निकेता॥

दोहा

मैं आउब सोइ बेष धरि, पहचानेउ तब मोहि।
जब एकान्त बुलाय सब, कथा सुनावउँ तोहि॥

चौपाई

सयन कीन्ह नृप आयसु मानी। आसन जाइ बैठ छलग्यानी॥
स्रमित भूप निद्रा अति आई। सो किमि सोव सोच अधिकाई॥
कालकेतु निसिचर तहँ आवा। जेहि सूकर होइ नृपहि भुलावा॥
परममित्र तापस नृप केरा। जानइ सो अति कपट घनेरा॥
तेहि के सत सुत अरु दस भाई। खल अति अजय देव-दुख-दाई॥
प्रथमहिं भूप समर सब मारे। बिप्र सत सुर देखि दुखारे॥
तेहि खल पाछिल बयरु सँभारा। तापस नृप मिलि मंत्र बिचारा॥
जेहि रिपुछय सोइ रचेन्हि उपाऊ। भावी बस न जान कछु राऊ॥

दोहा

रिपु तेजसी अकेल अपि, लघु करि गनिय न ताहु।
अजहुँ देत दुख रबिससिहि, सिर अवसेषित राहु॥

चौपाई

तापसनृप निज सखहिं निहारी। हरषि मिलेउ उठि भयउ सुखारी॥
मित्रहिं कहि सब कथा सुनाई। जातुधान बोला सुख पाई॥
अब साधेउँ रिपु सुनहु नरेसा। जौं तुम्ह कीन्ह मोर उपदेसा॥
परिहरि सोच रहहु तुम्ह सोई। बिन औषध बिआधि बिधि खोई॥
कुलसमेत रिपुमूल बहाई। चौथे दिवस मिलब मैं आई॥
तापसनृपहि बहुत परितोषी। चला महाकपटी अतिरोषी॥
भानु प्रतापहि बाजिसमेता। पहुचायेसि छन माँझ निकेता॥
नृपहि नारि पहिँ सयन कराई। हयगृह बाँधेसि बाजि बनाई॥

दोहा

राजा के उपरोहितहि, हरि लेइ गयउ बहोरि।
लेइ राखेसि गिरिखोह महँ, माया करि मति भोरि॥

चौपाई

आपु विरचि उपरोहितरूपा। परेउ जाइ तेहि सेज अनूपा॥
जागेउ नृप अनभये विहाना। देखि भवन अति अचरजु माना॥
मुनिमहिमा मन महँ अनुमानी। उठेउ गवहिं जेहि जान न रानी॥
कानन गयउ बाजि चढ़ि तेही। पुर नरनारि न जानेउ केही॥
गये जामयुग भूपति आवा। घर घर उत्सव बाज बधावा॥
उपरोहितहि देखि जब राजा। चकित बिलोक सुमिरि सोइ काजा॥
जुगसम नृपहिं गये दिन तीनी। कपटी मुनिपद रहि मति लीनी॥
समय जानि उपरोहित आवा। नृपहि मते सब कहि समुझावा॥

दोहा

नृप हरषेउ पहिचान गुरु, भ्रमवस रहा न चेत।
बरे तुरत सतसहस बर, विप्र कुटुंब समेत॥

चौपाई

उपरोहित जेवनार बनाई। छरस चारि विधि जस स्रुति गाई॥
मायामय तेहि कीन्ह रसोई। बिंजन बहु गनि सकइ न कोई॥
विविध मृगन्ह कर आमिष रांधा। तेहि महँ विप्रमास खल सांधा॥
भोजन कहँ सब विप्र बुलाये। पद पखारि सादर बैठाये॥
परुसन जबहिं लाग महिपाला। भई अकासबानी तेहि काला॥
विप्रवृन्द उठि उठि गृह जाहू। है बड़ि हानि, अन्न जनि खाहू॥
भयउ रसोई भूसुर-मासू। सब द्विज उठे मानि विस्वासू॥
भूप विकल मति मोह भुलानी। भावीवस न आव मुख बानी॥

दोहा

बोले विप्र, सकोप तब, नहिं कछु कीन्ह बिचार।
जाइ निसाचर होहु नृप, मूढ़ सहित परिवार॥

चौपाई

छत्रबंधु तैं विप्र बुलाई। घाले लिये सहित समुदाई॥
ईश्वर राखा धरम हमारा। जइहसि तैं समेत परिवारा॥
संबत मध्य नास तव होऊ। जलदाता न रहहि कुल कोऊ॥
नृप सुनि साप बिकल अतित्रासा। भइ बहोरि बरगिरा अकासा॥
बिप्रहु साप बिचारि न दीन्हा। नहिं अपराध भूप कछु कीन्हा॥
चकित विप्र सब सुनिनभ बानी। भूप गयउ जहँ भोजनखानी॥
तहँ न असन न बिप्र सुआरा। फिरेउ राउ मन सोच अपारा॥
सब प्रसंग महिसुरन्ह सुनाई। त्रसित परेउ अबनी अकुलाई॥

दोहा

भूपति भावी मिटइ नहिं, जदपि न दूषन तोर।
किये अन्यथा होइ नहिं, बिप्र साप अतिघोर॥

चौपाई

अस कहि सब महिदेव सिधाये। समाचार पुरलोगन्ह पाये॥
सोचहिं दूषन दैवहि देहीं। बिचरत हंस काक किय जेहीं॥
उपरोहितहिं भवन पहुँचाई। असुर तापसहिं खबर जनाई॥
तेहि खल जहँ तहँ पत्र पठाये। सजि सजि सैन भूप सब धाये॥
घेरेन्हि नगर निसान बजाई। बिबिध भाँति नित होत लराई॥
जूझे सकल सुभट करि करनी। बंधुसमेत परेउ नृप धरनी॥
सत्य-केतु-कुल कोउ नहिं बाँचा। विप्रसाप किमि होइ असाँचा॥
रिपु जिति सब नृप नगर बसाई। निज पुर गवने जय जस पाई॥

श्रीरामजन्म-महोत्सव

[इस अंश में श्रीरामचन्द्र जी तथा उनके भाइयों के जन्म और बाल्यावस्था का वर्णन है । आरम्भ में महाराज दशरथ के यज्ञ का भी वृत्तान्त दिया है गया ।]

चौपाई

अवधपुरी रघु-कुल-मनि-राऊ । वेदविदित तेहि दसरथ नाऊ ॥
धरम-धुरन्धर गुननिधि ग्यानी । हृदय भगति मति सारँगपानी ॥

दोहा

कौसल्यादिक नारिप्रिय, सब आचरन पुनीत ।
पतिअनुकूल औ प्रेमदृढ़, हरि-पद-कमल विनीत ॥

चौपाई

एक बार भूपति मन माहीं । भइ गलानि मोरे सुत नाहीं ॥
गुरुगृह गयेउ तुरत महिपाला । चरन लागि करि विनय विसाला ॥
निज दुख सुख सब गुरुहिं सुनायउ । कहि वसिष्ठ बहु विधि समुझायउ ॥
धरहु धीर होइहहिं सुत चारी । त्रिभुवन-विदित भगत-भय-हारी ॥
शृङ्गीरिषिहि वसिष्ठ बुलावा । पुत्रकाम सुभ जज्ञ करावा ॥
भगति सहित मुनि आहुति दीन्हे । प्रगटे अगिनि चरू कर लीन्हे ॥
जो वसिष्ठ कछु हृदय विचारा । सकलकाज भा सिद्ध तुम्हारा ॥
यह हवि बाँटि देहु नृप जाई । जथाजोग जेहि भाग बनाई ॥

दोहा

तब अदृश्य पावक भये, सकल सभहि समुझाइ।
परमानंदमगन नृप, हरप न हृदय समाइ॥

चौपाई

तबहिं राउ प्रियनारि बोलाईं। कौसल्यादि तहाँ चलि आईं॥
अरधभाग कौसल्यहि दीन्हा। उभय भाग आधे कर कीन्हा॥
कैकेई कहँ नृप सो दयऊ। रहेउ सो उभय भाग पुनि भयऊ॥
कौसल्या कैकई हाथ धरि। दीन्ह सुमित्रहि मन प्रसन्न करि॥
एहि विधि गर्भसहित सब नारी। भई हृदय हरषित सुख भारी॥
जा दिन तें हरि गर्भहि आये। सकललोक सुख संपति छाये॥
मंदिर महँ सब राजहिं रानी। सोभा सील तेज की खानी॥
सुखजुत कछुक काल चलि गयऊ। जेहि प्रभु प्रगट सो अवसर भयऊ॥

दोहा

जोग लगन ग्रह वार तिथि, सकल भये अनुकूल।
चर अरु अचर हरषजुत, रामजनम सुखमूल॥

चौपाई

नवमी तिथि मधुमास पुनीता। सुकल पच्छ अभिजित हरिप्रीता॥
मध्य दिवस अति सीत न घामा। पावन काल लोक विस्रामा॥

छन्द

भये प्रगट कृपाला दीनदयाला कौसल्या-हित-कारी।
हरषित महतारी मुनि-मन-हारी अद्भुतरूप निहारी॥
लोचन *अभिराम तनु †घनस्याम निजआयुध भुज चारी।
भूषन बनमाला नयन विसाला सोभासिन्धु खरारी॥

---

* पाठान्तर—"अभिरामा।"
† पाठान्तर—"घनश्यामा।"

कह दुइ कर जोरी अस्तुति तोरी केहि विधि करउँ अनन्ता।
माया-गुन-ग्यानातीत अमाना वेद पुरान भनन्ता॥
करुना-सुख-सागर सब-गुन-आगर जेहि गावहिं स्तुति संता।
सो मम हित लागी जनअनुरागी भयउ प्रगट श्रीकंता॥
ब्रह्मांडनिकाया निर्मित माया रोम रोम प्रति वेद कहै।
मम उर* सो वासी यह उपहासी सुनत धीरमति थिर न रहै॥
उपजा जब ग्याना प्रभु मुसकाना चरित बहुतविधि कीन्ह चहै।
कहि कथा सुहाई मातु बुझाई जेहि प्रकार सुतप्रेम लहै॥
माता पुनि बोली सो मति डोली तजहु तात यह रूपा।
कीजिय सिसुलीला अति-प्रिय-सीला यह सुख परम अनूपा॥
सुनि वचन सुजाना रोदन ठाना होइ बालक सुरभूपा।
यह चरित जे गावहि हरिपद पावहिं ते न परहिं भवकूपा॥

दोहा

विप्र-धेनु-सुर-संत हित, लीन्ह मनुज अवतार।
निज-इच्छा-निर्मित-तनु, माया-गुन-गो-पार॥

चौपाई

दसरथ पुत्रजनम सुनि काना। मानहुँ ब्रह्मानंद समाना॥
परमानद पूरि मन राजा। कहा बोलाइ बजावहु बाजा॥
वृन्द वृन्द चली मिलि लोगाई। सहज सिंगार किये उठि धाई॥
करि आरती निछावरि करहीं। बार बार सिसुचरनन्हि परहीं॥
कैकयसुता सुमित्रा दोऊ। सुन्दर सुत जनमत भईं सोऊ॥
तेहि अवसर जो जेहि विधि आवा। दीन्ह भूप जो जेहि मन भावा॥
कछुक दिवस बीते एहि भाँती। जात न जानय दिन अरु राती॥
नामकरन कर अवसर जानी। भूप बोलि पठये मुनि ग्यानी॥

---

* हृदय, किन्तु यहाँ गर्भ का अर्थ है।

करि पूजा भूपति अस भाखा । धरिय नाम जो मुनि गुनि राखा ॥
इन्हके नाम अनेक अनूपा । मैं नृप कहब स्वमति अनुरूपा ॥
जो आनंदसिंधु सुखरासी । सीकर तें त्रैलोक सुपासी ॥
सो सुखधाम राम अस नामा । अखिललोक दायक विस्रामा ॥
विस्वभरन पोषन कर जोई । ता कर नाम भरत अस होई ॥
जा के सुमिरन तें रिपुनासा । नाम सत्रुहन वेद प्रकासा ॥

दोहा

लच्छन धाम सु रामप्रिय, सकल-जगत आधार ।
गुरु वसिष्ठ तेहि राखेऊ, लछिमन नाम उदार ॥

चौपाई

धरे नाम गुरु हृदय विचारी । वेदतत्व नृप तव सुत चारी ॥
वारेहि तें निज हित पति जानी । लछिमन राम-चरन-रति मानी ॥
भरत सत्रुहन दूनउ भाई । प्रभुसेवक जसि प्रीति बड़ाई ॥
स्याम गौर सुन्दर दोउ जोरी । निरखहिं छवि जननी तृन तोरी ॥
कवहुँ उछंग कवहुँ वर पलना । मातु दुलारहिं कहि प्रियललना ॥
एक वार जननी अन्हवाये । करि सिंगार पलना पौढाये ॥
निज-कुल-इष्ट देव भगवाना । पूजा हेतु कीन्ह पकवाना ॥
करि पूजा नैवेद्य चढावा । आपु गईं जहँ पाक वनावा ।
वहुरि मातु तहवाँ चलि आई । भोजन करत देख सुत जाई ॥
गइ जननी सिसु पहिं भयभीता । देखा वाल तहाँ पनि सूता ॥
इहाँ उहाँ दुइ वालक देखा । मतिभ्रम मोर कि आन विसेखा ॥

दोहा

देखरावा मातहिं निज, अद्भुत रूप अखंड ।
रोम रोम प्रति लागेहि, कोटि कोटि ब्रह्मंड ॥

विश्वामित्र की याचना

[श्रीरामचन्द्र जी सयाने हो गये हैं। इधर महर्षि विश्वामित्र जी के तपोवन में उनको राक्षस तंग करते हैं। इसलिये विश्वामित्र जी दशरथ से श्री रामचन्द्र जी को माँगने के लिये जाते हैं। महाराज दशरथ कुछ आनाकानी के बाद श्रीरामचन्द्र जी और लक्ष्मण जी को विश्वामित्र जी को सौंपते हैं। श्रीरामचन्द्र जी ताडिका और सुबाहु का वध करते हैं। मारीच को समुद्र के किनारे भगा देते हैं। जनकपुर में धनुष यज्ञ की चर्चा सुन कर विश्वामित्र जी दोनों भाइयों को लेकर जनकपुर को जाते हैं। रास्ते में श्रीरामचन्द्र जी अहिल्या का उद्धार करते हैं। इतनी कथा इस अंश में वर्णित है।]

चौपाई

विश्वामित्र महामुनि ग्यानी। बसहिं बिपिन सुभआस्रम जानी॥
जहँ जप जज्ञ जोग मुनि करहीं। अति मारीच सुबाहुहिं डरहीं॥
देखत जज्ञ निसाचर धावहिं। करहिं उपद्रव मुनि दुख पावहिं॥
गाधि-तनय मन चिन्ता ब्यापी। हरि बिनु मरिहि न निसिचर पापी॥
तब मुनिबर मन कीन्ह बिचारा। प्रभु अवतरेउ हरन महिभारा॥
एहि मिस देखउँ प्रभुपद जाई। करि बिनती आनउँ दोउ भाई॥
ग्यान-बिराग-सकल-गुन-अयना। सो प्रभु मैं देखब भरि नयना॥

दोहा

बहु बिधि करत मनोरथ, जात लागि नहिं बार॥
करि मज्जन सरजूजल, गये भूप दरबार॥

चौपाई

मुनि आगमन सुना जब राजा। मिलन गयउ लेइ विप्र समाजा॥
करि दंडवत मुनिहिं सनमानी। निज आसन बैठारेन्हि आनी॥
चरन पखारि कीन्हि अति पूजा। मो सम आजु धन्य नहिं दूजा॥
विविधभाँति भोजन करवावा। मुनिवर हृदय हरप अति पावा॥
पुनि चरनन मेले सुत चारी। राम देखि मुनि देह बिसारी॥
भये मगन देखत मुख सोभा। जनु चकोर पूरन ससि लोभा॥
तब मन हरषि बचन कह राऊ। मुनि अस कृपा न कीन्हेउ काऊ॥
केहि कारन आगमन तुम्हारा। कहहु सो करत न लावउँ बारा॥
असुर समूह सतावहिं मोही। मैं जाचन आयउँ नृप तोही॥
अनुज समेत देहु रघुनाथा। निसि-चर-बध मैं होब सनाथा॥

दोहा

देहु भूप मन हरषित, तजहु मोह अग्यान।
धर्म सुजस प्रभु तुम्ह कहँ, इन्ह कहँ अति कल्यान॥

चौपाई

सुनि राजा अति अप्रिय बानी। हृदय कंप मुख दुति कुम्हलानी॥
चैाथेपन पायउँ सुत चारी। विप्र बचन नहिं कहेहु विचारी॥
माँगहु भूमि धेनु धन कोसा। सरवस देउँ आजु सह रोसा॥
देह प्रान तेँ प्रिय कछु नाहीँ। सोउ मुनि देउँ निमिप एक माहीँ॥
सब सुत प्रीय प्रान की नाईं। राम देत नहिं बनइ गोसाईं॥
कहँ निसिचर अतिघोर कठोरा। कहँ सुन्दर सुत परम किसोरा॥
सुनि नृपगिरा प्रेम-रस-सानी। हृदय हरप माना मुनि ग्यानी॥
तब बसिष्ट बहु विधि समुझावा। नृपसन्देह नास कहँ पावा॥

अति आदर दोउ तनय बोलाये। हृदय लाइ बहुभांति सिखाये॥
मेरे प्राननाथ सुत दोऊ। तुम्ह मुनि पिता आन नहिं कोऊ॥

दोहा

सौंपे भूप रिषिहि सुत, बहुबिधि देइ असीस।
जननीभवन गये प्रभु, चले नाइ पद सीस॥

सोरठा

पुरुषसिंह दोउ बीर, हरषि चले मुनि-भय-हरन।
कृपासिन्धु मति धीर, अखिल बिस्व-कारन-करन॥

चौपाई

चले जात मुनि दीन्ह दिखाई। सुनि ताड़का क्रोध करि धाई॥
एकहि बान प्रान हरि लीन्हा। दीन जानि तेहि निज पद दीन्हा॥
तब रिषि निज नाथहिं जिय चीन्ही। विद्यानिधि कहँ विद्या दीन्ही॥
जा ते लाग न छुधा पिपासा। अतुलित बल तन तेज प्रकासा॥

दोहा

आयुध सर्ब समर्पि कै, प्रभु निज आश्रम आनि।
कन्द मूल फल भोजन, दीन्ह भगत हित जानि॥

चौपाई

प्रात कहा मुनि सन रघुराई। निर्भय जज्ञ करहु तुम्ह जाई॥
होम करन लागे मुनि झारी। आपु रहे मख की रखवारी॥
सुनि मारीच निसाचर कोही। लेइ सहाय धावा मुनि द्रोही॥
बिनु फर बान राम तेहि मारा। सत जोजन गा सागर पारा॥
पावकसर सुबाहु पुनि मारा। अनुज निसाचर कटक सँहारा॥
मारि असुर द्विज-निर्भय-कारी। अस्तुति करहिं देव-मुनि-झारी॥

तहँ पुनि कछुक दिवस रघुराया। रहे कीन्ह बिप्रन्ह पर दाया॥
भगति हेतु बहु कथा पुराना। कहे विप्र जद्यपि प्रभु जाना॥
तब मुनि सादर कहा बुझाई। चरित एक प्रभु देखिय जाई॥
धनुषजग्य सुनि रघु-कुल नाथा। हरषि चले मुनिवर के साथा॥
आश्रम एक दीख मग माहीं। खग मृग जीव जंतु तहँ नाहीं॥
पूछा मुनिहि सिला प्रभु देखी। सकल कथा मुनि कही बिसेखी॥

दोहा

गौतमनारी सापवस, उपल देह धरि धीर।
चरन-कमल-रज चाहती, कृपा करहु रघुबीर॥

छन्द

परसत पदपावन सोकनसावन प्रगट भई तपपुंज सही।
देखत रघुनायक जन-सुख-दायक सन्मुख होइ कर जोरि रही॥
अति प्रेम अधीरा पुलक सरीरा मुख नहिं आवइ बचन कही।
अतिसय बड़भागी चरनन्हि लागी जुगल नयन जलधार बही॥
धीरज मन कीन्हा प्रभु कहँ चीन्हा रघुपति-कृपा भगति पाई।
अति निर्मल बानी अस्तुति ठानी ग्यानगम्य जय रघुराई॥
मैं नारि अपावन प्रभु जगपावन रावनरिपु जन-सुख-दाई।
राजीवविलोचन भव-भय-मोचन पाहि पाहि सरनहि आई॥
मुनि साप जो दीन्हा अति भल कीन्हा परम अनुग्रह मैं माना।
देखेउँ भरि लोचन हरि भवमोचन इहइ लाभ संकर जाना॥
बिनती प्रभु मोरी मैं अति भोरी नाथ न माँगउँ वर आना।
पद-कमल-परागा रस अनुरागा मम मन मधुप करइ पाना॥
जेहि पद सुरसरिता परम पुनीता प्रगट भई सिव सीस धरी।
सोई पद-पंकज जेहि पूजत अज मम सिर धरेउ कृपाल हरी॥
एहि भाँति सिधारी गौतम नारी बार बार हरिचरन परी।
जो अति मन भावा सो बर पावा गइ पतिलोक अनन्द भरी॥

परशुराम और लक्ष्मणादि का संवाद

[अहिल्या का उद्धार करके श्रीरामचन्द्र जी और लक्ष्मण जी विश्वामित्र जी, सहित आगे बढ़े और जनकपुर आये। वहाँ धनुष यज्ञ का उत्सव था। राजा जनक के पास शिव जी का एक धनुष था। उनका प्रण था कि जो उस धनुष को तोड़ेगा वही सीता को वरेगा। अनेकानेक राजा उपस्थित थे; किन्तु शिव जी का धनुष किसी के भी तोड़े न टूटा। श्रीरामचन्द्र जी ने उसे तोड़ डाला, अतः सीता जी ने श्रीरामचन्द्र जी को जयमाल पहना दी। श्रीरामचन्द्र जी ने शिव-धनुष को तोड़ डाला है—यह सुन कर परशुराम जी क्रुद्ध हो कर आये हैं। पहिले वे जनक से उत्सव का कारण पूँछते हैं और फिर पूँछते हैं कि, धनुष को किसने तोड़ा? जनक महाराज चुपे हैं। इतने में श्री रामचन्द्र जी उठ कर उनसे नम्रभाव से कहते हैं कि, धनुष मैंने तोड़ा है। फिर परशुराम जी और लक्ष्मण जी में वादविवाद होता है। अन्त में परशुराम जी श्रीरामचन्द्र जी को पहिचान कर, उनकी स्तुति करके लौट जाते हैं। इस अवतरण में इतनी ही कथा का वर्णन किया गया है।]

चौपाई

तेहि अवसर सुनि सिव-धनु-भंगा। आये भृगु-कुल-कमल-पतंगा॥
देखि महीप सकल सकुचाने। बाज झपट जनु लवा लुकाने॥
गौर सरीर भूति भलि भ्राजा। भाल बिसाल त्रिपुंड बिराजा॥
सीस जटा ससि बदन सुहावा। रिसिवस कछुक अरुन होइ आवा॥
भ्रकुटी कुटिल नयन रिस राते। सहजहुँ चितवत मनहुँ रिसाते॥
वृषभ कंध उर बाहु बिसाला। चारु जनेउ माल मृगछाला॥
कटि मुनिवसन तून दुइ बाँधे। धनु सर कर कुठार कल काँधे॥

दोहा

संत वेष करनी कठिन, वरनि न जाइ सरूप।
धरि मुनितनु जनु वीररस, आयउ जहँ सब भूप॥

चौपाई

देखत भृगु-पति-वेष कराला। उठे सकल भयविकल भुआला॥
पितुसमेत कहि निज निज नामा। लगे करन सब दंडप्रनामा॥
जेहि सुभाय चितवहिं हित जानी। सो जानइ जनु आइ* खुटानी॥
जनक वहोरि आइ सिरु नावा। सीय वोलाइ प्रनाम करावा॥
आसिष दीन्हि सखी हरषानी। निज समाज लइ गईं सयानी॥
विश्वामित्र मिले पुनि आई। पदसरोज मेले दोउ भाई॥
राम लषन दसरथ के ढोटा। दीन्ह असीस दीन्ह भल जोटा॥
रामहि चितइ रहे भरि लोचन। रूप अपार मार-मद-मोचन॥

दोहा

वहुरि विलोक विदेह सन, कहहु काह अति भीर।
पूछत जानि अजान जिमि, व्यापेउ कोप सरीर॥

चौपाई

समाचार कहि जनक सुनाये। जेहि कारन महीप सब आये॥
सुनत वचन फिरि अनत निहारे। देखे चाप खंड महि डारे॥
अतिरिस वोले वचन कठोरा। कहु जड जनक धनुष केइ तोरा॥
वेगि देखाउ मूढ़ नतु आजू। उलटउँ महि जहँ लगि तवराजू॥
अति डर उतर देत नृप नाहीं। कुटिल भूप हरषे मन माहीं॥
सुर मुनि नाग नगर-नर-नारी। सोचहिँ सकल त्रास उर भारी॥

---

*आइ=आयु, उम्र, अवस्था।

मन पछितातिं सीय महतारी। विधि अब सवरी वात विगारी॥
भृगुपति कर सुभाव सुनि सीता। अरध निमेष कलपसम वीता॥

दोहा

सभय विलोके लोग सब, जानि जानकी भीर।
हृदय न हरप विषाद कछु, वोले श्रीरघुवीर॥

चौपाई

नाथ सम्भु-धनु-भंजनि-हारा। होइहि कोउ एक दास तुम्हारा॥
आयसु कहा कहिय किन मोही। सुनि रिसाइ वोले मुनि कोही॥
सेवक सो जो करई सेवकाई। अरिकरनी करि करिय लराई॥
सुनहु राम जेइ सिवधनु तोरा। सहस-वाहु सम सो रिपु मोरा॥
सो विलगाउ विहाय समाजा। नतु मारे जैहैं सव राजा॥
सुनि मुनिवचन लषन मुसुकाने। वोले परसुधरहि अपमाने॥
वहु धनुहीं तोरेउ लरकाईं। कवहुँ न अस रिस कीन्हि गुसाईं॥
एहि धनु पर ममता केहि हेतू। सुनि रिसाइ कह भृगु-कुल केतू॥

दोहा

रे नृपवालक कालवस, वोलत तोहि न सँभार॥
धनुहीं सम त्रिपुरारि धनु, विदित सकल संसार॥

चौपाई

लषन कहा हँसि हमरे जाना। सुनहु देव सव धनुष समाना॥
का छति लाभ जून धनु तोरे। देखा राम नये के भोरे॥
छुवत टूट रघुपतिहु न दोषू। मुनि विनु काज करिय कत रोषू॥
वोले चितय परसु की ओरा। रे सठ सुनेसि सुभाउ न मोरा॥
वालक बोलि बधउँ नहिं तोही। केवल मुनि जड़ जानेहि मोही॥
वाल-ब्रह्मचारी अति कोही। विस्वविदित छत्रिय-कुल-द्रोही॥

भुजबल भूमि भूप बिनु कीन्ही। बिपुल बार महिदेवन्ह दीन्ही ॥
सहस-बाहु - भुज-छेदनि-हारा। परसु बिलोकु महीपकुमारा ॥

दोहा

मातुपितहि जनि सोचबस, करसि महीपकिसोर।
गरभन के अरभकदलन, परसु मोर अतिघोर ॥

चौपाई

बिहँसि लषन बोले मृदुबानी। अहो मुनीस महाभट मानी ॥
पुनि पुनि मोहिं देखाव कुठारू। चहत उड़ावन फूँकि पहारू ॥
इहाँ कुम्हड़बतिया कोउ नाहीं। जो तरजनी देखि मर जाहीं ॥
देखि कुठार सरासन बाना। मैं कछु कहेउ सहितअभिमाना ॥
भृगुकुल समुझि जनेउ बिलोकी। जो कछु कहहु सहउँ रिसि रोकी ॥
सुर महिसुर हरिजन अरु गाई। हमरे कुल इन्ह पर न सुराई ॥
बधे पाप अपकीरति हारे। मारतहू पा परिय तुम्हारे ॥
कोटि कुलिस-सम बचन तुम्हारा। ब्यर्थ धरहु धनु बान कुठारा ॥

दोहा

जो बिलोकि अनुचित कहेउँ, छमहु महामुनि धीर।
सुनि सरोष भृगु-बंस-मनि, बोले गिरा गँभीर ॥

चौपाई

कौसिक सुनहु मंद यह बालक। कुटिल कालबस निज-कुल-घालक
भानु - बंस - राकेस - कलंकू। निपट निरंकुस अबुध असंकू ॥
कालकवल होइहि छन माहीं। कहउँ पुकारि खोरि मोहि नाहीं ॥
तुम्ह हटकहु जो चहहु उबारा। कहि प्रताप बल रोष हमारा ॥
लषन कहेउ मुनि सुजस तुम्हारा। तुमहिं अछत को बरनहि पारा ॥
अपने मुँह तुम्ह आपनि करनी। बार अनेक भाँति बहु बरनी ॥

नहिं संतोष तौ पुनि कछु कहहू । जनि रिस रोकि दुसह दुख सहहू ॥
वीरवृत्ति तुम धीर अछोभा । गारी देत न पावहु सोभा ॥

दोहा

सूर समर करनी करहिं, कहि न जनावहिं आपु ।
विद्यमान रिपु पाइ रन, कायर करहिं प्रलापु ॥

चौपाई

तुम्ह तौ काल हाँक जनु लावा । बार बार मोहि लागि बोलावा ॥
सुनत लषन के वचन कठोरा । परसु सुधारि धरेउ कर घोरा ॥
अब जनि देइ दोष मोहि लोगू । कटुवादी बालक वधजोगू ॥
बाल विलोकि बहुत मैं बाँचा । अब एहि मरनहार भा साँचा ॥
कौसिक कहा छमिय अपराधू । बाल -दोष - गुन गनहिं न साधू ॥
कर कुठार मैं अकरनकोही । आगे अपराधी गुरुद्रोही ॥
उतर देत छाँड़उँ बिनु मारे । केवल कौसिक सील तुम्हारे ॥
न तु एहि काटि कुठार कठोरे । गुरुहिं उरिन होतेउँ स्रम थोरे ॥

दोहा

गाधिसुवनु कह हृदय हँसि, मुनिहि हरिअरइ सूझ ।
अयमय खाँड न ऊखमय, अजहुँ न बूझ अबूझ ॥

चौपाई

कहेउ लषन मुनि सील तुम्हारा । को नहिँ जान विदित संसारा ॥
माता पितहिं उरिन भये नीके । गुरुरिन रहा सोच बड़ जी के ॥
सो जनु हमरेहि माथे काढ़ा । दिन चलि गयेउ ब्याज बहु बाढा ॥
अब आनिय ब्यवहरिया बोली । तुरत देउँ मैं थैली खोली ॥
सुनि कटुवचन कुठारु सुधारा । हाय हाय सब सभा पुकारा ॥
भृगुवर परसु देखावहु मोही । विप्र विचारि बचउ नृपद्रोही ॥

मिले न कबहुँ सुभट रन गाढ़े। द्विज देवता घरहिं के बाढ़े॥
अनुचित कहि सबलोग पुकारे। रघुपति सैनहिं लषन निवारे॥

दोहा

लषन उतर आहुति सरिस, भृगु-बर-कोप कृसानु।
बढ़त देखि जल सम बचन, बोले रघु-कुल-भानु॥

चौपाई

नाथ करहु बालक पर छोहू। सूध दूधमुख करिय न कोहू॥
जौं पै प्रभुप्रभाउ कछु जाना। तौ कि बराबरि करइ अयाना॥
जौं लरिका कछु अनुचित करहीं। गुरु पितु मातु मोद मन भरहीं॥
करिय कृपा सिसु सेवकु जानी। तुम्हसम सील धीर मुनि ग्यानी॥
रामबचन सुनि कछुक जुड़ाने। कहि कछु लषन बहुरि मुसुकाने॥
हँसत देखि नखसिखरिस व्यापी। राम तोर भ्राता बड़ पापी॥
गौर सरीर स्याम मन माहीं। काल-कूट-मुख पयमुख नाहीं॥
सहज टेढ़ अनुहरइ न तोही। नीच मीच सम देख न मोही॥

दोहा

लषन कहेउ हँसि सुनहु मुनि, क्रोध पाप कर मूल।
जेहि बसजन अनुचित करहिं, चरहिं बिस्वप्रतिकूल॥

चौपाई

मैं तुम्हार अनुचर मुनिराया। परिहरि कोप करिय अब दाया॥
टूट चाप नहिं जुरहि रिसाने। बैठिय होइहहिं पाय पिराने॥
जौं अतिप्रिय तौ करिय उपाई। जोरिय कोउ बड़ गुनी बोलाई॥
बोलत लषनहिं जनक डेराहीं। मष्ट करहु अनुचित भल नाहीं॥
थर थर कापहिं पुर-नर-नारी। छोट कुमार खोट बड़ भारी॥
भृगुपति सुनि सुनि निर्भयबानी। रिस तन जरइ होइ बलहानी॥

बोले रामहिं देइ निहोरा। बचउँ बिचारि बँधु लघु तोरा॥
मन मलीन तनु सुन्दर कैसे। विष-रस-भरा कनकघट जैसे॥

दोहा

सुनि लछिमन बिहँसे बहुरि, नयन तरेरे राम।
गुरु समीप गवने सकुचि, परिहरि बानी बाम॥

चौपाई

अतिबिनीत मृदु सीतल बानी। बोले राम जोरि जुगपानी॥
सुनहु नाथ तुम सहज*सुजाना। बालकबचन करिय नहिं काना॥
बररै बालक एक सुभाऊ। इन्हहिं न संत बिदूषहिं काऊ॥
तेहि नाहीं कछु काज बिगारा। अपराधी मैं नाथ तुम्हारा॥
कृपा कोप बध बंध गोसाईं। मो पर करिय दास की नाईं॥
कहिय बेगि जेहि बिधि रिस जाई। मुनिनायक सोइ करिउँ उपाई॥
कह मुनि राम जाइ रिस कैसे। अनहुँ अनुज तव चितव अनैसे॥
एहि के कण्ठ कुठार न दीन्हा। तौ मैं कहा कोप करि कीन्हा॥

दोहा

गर्भ स्रवहिं अवनी परहिं, सुनि कुठार-गति घोर।
परसु अछत देखउँ जियत, बैरी भूपकिसोर॥

चौपाई

बहइ न हाथ दहइ रिस छाती। भा कुठार कुण्ठित नृपघाती॥
भयउ बाम बिधि फिरेऊ सुभाऊ। मोरे हृदय कृपा कसि काऊ॥
आजु दैव दुख दुसह सहावा। सुनि सौमित्र बिहँसि सिरु नावा॥
बाउकृपा मूरति अनुकूला। बोलत बचन झरत जनु फूला॥

---

* स्वभावतः।

जौं पै कृपा जरहिँ मुनि गाता । क्रोध भये तनु राखु विधाता ॥
देखु जनक हठि बालक एहू । कीन्ह चहत जड़ जमपुर गेहू ॥
वेगि करहु किन आँखिन ओटा । देखत छोट खोट नृपढोटा ॥
बिहँसे लषन कहा मुनि पाहीँ । मूँदिय आँखि कतहुँ कोउ नाहीँ ॥

दोहा

परसुराम तब राम प्रति, बोले उर अतिक्रोध ।
सम्भुसरासन तोरि सठ, करसि हमार प्रबोध ॥

चौपाई

बन्धु कहइ कटु सम्मत तोरे । तू छल विनय करसि कर जोरे ॥
करि परतोष मोर संग्रामा । नाँहि त छाँडु कहाउव रामा ॥
छल तजि करहि समर सिवद्रोही । बन्धुसहित नतु मारउँ तोही ॥
भृगुपति कहहिं कुठार उठाये । मन मुसुकाहिं राम सिर नाये ॥
गुनहु लषन कर हम पर रोषू । कतहुँ सुधाइहु तेँ बड़ दोषू
टेढ़ जानि बंदइ सब काहू । वक्र चन्द्रमहि ग्रसइ न राहू ॥
राम कहेउ रिसि तजिय मुनीसा । कर कुठार आगे यह सीसा ॥
जेहि रिस जाइ करिय सोइ स्वामी । मोहि जानिय आपन अनुगामी ॥

दोहा

प्रभु सेवकहिँ समर कस, तजहु विप्रवर रोसु ।
वेष विलोकि कहेसि कछु, बालकहू नहिँ दोसु ॥

चौपाई

देखि कुठार - बान - धनु - धारी । भइ लरिकहिं रिस वीरु विचारी ॥
नाम जान पै तुम्हहिं न चीन्हा । वंससुभाव उतरु तेइ दीन्हा ॥
जौं तुम्ह अवतेहु मुनि की नाईं । पदरज सिर सिसु धरत गोसाईं ॥
छमहु . चूक अनजानत केरी । चहिय विप्रउर कृपा घनेरी ॥

हमहिं तुमहिं सरबर कस नाथा। कहहु न कहाँ चरन कहँ माथा॥
राम मात्र लघु नाम हमारा। परसु सहित बड़ नाम तुम्हारा॥
देव एक गुन धनुष हमारे। नवगुन परम पुनीत तुम्हारे॥
सब प्रकार हम तुम्ह सन हारे। छमहु बिप्र अपराध हमारे॥

दोहा

बार बार मुनि बिप्रवर, कहा राम सन राम।
बोले भृगुपति सरुष होइ, तहूँ बन्धुसम बाम॥

चौपाई

निपटहि द्विज करि जानेहि मोही। मैं जस विप्र सुनावउँ तोही॥
चाप स्रुवा सर आहुति जानू। कोप मोर अतिघोर कृसानू॥
समिध सैन चतुरंग सुहाई। महामहीप भये पसु आई॥
मैं यह परसु काटि बलि दीन्हे। समरजज्ञ जग कोटिक कीन्हे॥
मोर प्रभाव विदित नहिं तोरे। बोलसि निदरि विप्र के भोरे॥
भंजेउ चाप दाप बड़ बाढा। अहमिति मनहुँ जीति जग ठाढा॥
राम कहा मुनि कहहु बिचारी। रिस अति बड़ि लघु चूक हमारी॥
छुअतहि टूट पिनाक पुराना। मैं केहि हेतु करउँ अभिमाना॥

दोहा

जौं हम निदरहिं विप्र बदि, सत्य सुनहु भृगुनाथ।
तौ अस को जग सुभट जेहि, भयवस नावहिं माथ॥

चौपाई

देव दनुज भूपति भट नाना। समबल अधिक होउ बलवाना॥
जौं रन हमहिं प्रचारइ कोऊ। लरहिं सुखेन काल किन होऊ॥
छत्रियतनु धरि समर सकाना। कुलकलंक तेहि पाँवर जाना॥
कहउँ सुभाव न कुलहिं प्रसंसी। कालहु डरहिं न रन रघुबंसी॥

विप्रबंस कै असि प्रभुताई। अभय होइ जो तुम्हहिं डराई ॥
सुनि मृदुवचन गूढ रघुपति के। उघरे पटल परसु धर-मति के ॥
राम रमापति कर धनु लेहू। खैंचहु मिटइ मोर संदेहू ॥
देत चाप आपुहि चलि गयेऊ। परसुराम मन बिसमय भयेऊ ॥

दोहा

जाना रामप्रभाव तब, पुलक प्रफुल्लित गात।
जोरि पानि बोले बचन, हृदय न प्रेम समात ॥

चौपाई

जय रघुबंस - बनज- बन-भानू। गहन-दनुज-कुल-दहन कृसानू ॥
जय सुर-विप्र-धेनु-हित-कारी। जय मद-मोह कोह-भ्रम-हारी ॥
बिनय - सील-करुना-गुन-सागर। जयति बचनरचना अतिनागर ॥
सेवकसुखद सुभग सब अंगा। जय सरीरछवि कोटिअनगा ॥
करउँ कहा मुख एक प्रसंसा। जय महेस - मन- मानस-हंसा ॥
अनुचित वचन कहेउँ अज्ञाता। छमहु छमामंदिर दोउ भ्राता ॥
कहि जय जय जय रघु-कुल-केतू। भृगुपति गये बनहिं तप हेतू ॥
अपभय कुटिल महीप डराने। जहँ तहँ कायर गवहिँ पराने ॥

दोहा

देवन दीन्ही दुंदुभी, प्रभु पर बरषहिँ फूल।
हरषे पुर-नर-नारि सब, मिटा मोहमय सूल ॥

श्रीरामवनगमन

[श्रीरामचन्द्र जी का सीता जी के साथ विवाह हो गया है। राजा दशरथ श्रीरामचन्द्र जी को युवराज बनाना चाहते हैं। अतएव एक दिन नियत कर दिया गया है। सब तैयारी हो चुकी हैं। किन्तु एक दिन पहले मन्थरा नाम की दासी की कुमन्त्रणा से महारानी कैकेई महाराज दशरथ से यह वर मांगती हैं कि भरत का अभिषेक किया जाय और श्रीरामचन्द्र जी को चौदह वर्ष के लिये वनवास दे दिया जाय। महाराज बहुत कुछ समझाते हैं। वे रात भर महारानी को समझाते हैं, किन्तु महारानी तो भी नहीं मानतीं। राजा वचनबद्ध हो चुके हैं। अतएव मारे दुःख के वे वहीं पडे रहते हैं। सवेरा होता है, किन्तु महाराज राजमहल से नहीं निकलते हैं। दर्वाजे पर लोगों की भीड लगी है। इसके आगे की कथा नीचे के अवतरण में कही गयी है।]

दोहा

द्वारभीर सेवक सचिव, कहहिँ उदित रवि देखि।
जागे अजहुँ न अवधपति, कारन कवनु विसेखि॥

चौपाई

पछले पहर भूप नित जागा। आजु हमहि बड़ अचरजु लागा॥
जाहु सुमंत्र जगावहु जाई। कीजिय काज रजायसु पाई॥
गये सुमंत्र तब राउर पाहीं। देखि भयावन जात डेराहीं॥
पूछे कोउ न ऊतरु देई। गये जेहि भवन भूप कैकेई॥

कहि जय जीव बैठ सिर नाई। देखि भूपगति गयेउ सुखाई ॥
सचिव सभीत सकइ नहिं पूछी। बोली असुभ भरी सुभछूछी ॥

दोहा

परी न राजहि नींद निसि, हेतु जान जगदीसु।
रामु रामु रटु भोरु किय, कहइ न मरमु महीसु ॥

चौपाई

आनहु रामहिं बेगि बुलाई। समाचार सब पूछेहु आई ॥
चलेउ सुमंत्र राउरुख जानी। लखी कुचालि कीन्हि कछु रानी ॥
सोच विकल मग परइ न पाऊ। रामहिं बोलि कहिहि का राऊ ॥
उर धरि धीरज गयउ दुआरे। पूछहिं सकल देखि मनमारे ॥
समाधानु सो करि सब ही का। गयउ जहाँ दिन-कर-कुल टीका ॥
राम सुमंत्रहि आवत देखा। आदरु कीन्ह पिता सम लेखा ॥
निरखि वदन कहि भूपरजाई। रघु-कुल-दीपहिं चलेउ लिवाई ॥
रामु कुभाँति सचिव संग जाहीं। देखि लोग जहँ तहँ बिलखाहीं ॥

दोहा

जाइ दीख रघु-बंस-मनि, नरपति निपट कुसाजु।
सहमि परेउ लखि सिंहनिहि, मनहुँ वृद्ध गजराजु ॥

चौपाई

सूखहि अधर जरहिं सब अगू। मनहुँ दीन मनिहीन भुअंगू ॥
सरुप समीप देखि कैकेई। मानहुँ मीचु घरी गनि लेई ॥
करुनामय मृदु राम सुभाऊ। प्रथम दीख दुख सुना न काऊ ॥
तदपि धीर धरि समउ विचारी। पूछी मधुर वचन महतारी ॥
मोहि कहु मातु तात-दुख-कारन। करिअ जतन जेहि होइ निवारन ॥
सुनहु राम सब कारन एहू। राजहिं तुम्ह पर बहुत सनेहू ॥

देन कहेन्हि मोहिं दुइ बरदाना। माँगेउँ जो कछु मोहिं सोहाना॥
सो सुनि भयेउ भूपउर सोचू। छाँड़ि न सकहिं तुम्हार सँकोचू॥

दोहा

सुत सनेहु इत बचन उत, संकट परेउ नरेसु।
सकहु तो आयसु धरहु सिर, मेटहु कठिन कलेसु॥

चौपाई

निधरक बैठि कहइ कटुबानी। सुनत कठिनता अति अकुलानी॥
जीभ कमान बचन सर नाना। मन महीप मृदु लच्छ समाना॥
जनु कठोरपनु धरे सरीरू। सिखइ धनुषविद्या बरबीरू॥
सब प्रसँगु रघुपतिहि सुनाई। बैठि मनहुँ तनु धरि निठुराई॥
मन मुसकाइ भानु-कुल-भानू। राम सहज - आनन्द-निधानू॥
बोले बचन बिगत सब दूषन। मृदु मंजुल जनु बागबिभूषन॥
"सुनु जननी सोइ सुत बडभागी। जो पितु-मातु-बचन अनुरागी॥
तनय मातु - पितु - पोषन हारा। दुर्लभ जननि सकल संसारा।"

दोहा

मुनिगन मिलनु बिसेषि बन, सबहि भाँति हित मोर।
तेहि महँ पितुआयसु बहुरि, संमत जननी तोर॥

चौपाई

भरत प्रानप्रिय पावहिं राजू। बिधि सबबिधि मोहिंसनमुख आजू॥
जौं न जाउँ बन पेसेहु काजा। प्रथम गनिय मोहि मूढ़समाजा॥
सेवहिं अरँडु कलपतरु त्यागी। परिहरि अमिय लेहि बिषु माँगी॥
तेउ न पाइ अस समउ चुकाहीं। देखु बिचारि मातु मनमाहीं॥
अंब एक दुख मोहि बिसेखी। निपट बिकल नरनायक देखी॥
थोरिहि बात पितहि दुख भारी। होति प्रतीति न मोहि महतारी॥

राउ धीर गुन-उदधि-अगाधू। भा मोहि तें कछु बड़ अपराधू॥
तातें मोहि न कहत कछु राऊ। मोरि सपथ तोहि कहु सतिभाऊ॥

दोहा

सहज सरल रघुवरवचन, कुमति कुटिल करि जान।
चलइ जोंकि जिमि वक्रगति, जद्यपि सलिल समान॥

चौपाई

रहसी रानि रामरुख पाई। बोली कपटसनेह जनाई॥
सपथ तुम्हारि भरत कइ आना। हेतु न दूसर मैं कछु जाना॥
तुम्ह अपराध जोग नहि ताता। जननी-जनक-बंधु सुख दाता॥
राम सत्य सब जो कछु कहहू। तुम्ह पितु-मातु-वचन रत अहहू॥
पितहिँ बुझाइ कहहु बलि सोई। चौथेपन जिहि अजसु न होई॥
तुम्ह सम सुअन सुकृति जेहि दीन्हे। उचित न तासु निरादरु कीन्हे॥
लागहिँ कुमुख बचन सुभ कैसे। मगह गयादिक तीरथ जैसे॥
रामहिँ मातुवचन सब भाये। जिमि सुरसरिगत सलिल सुहाये॥

दोहा

गइ मुरछा रामहिँ सुमिरि, नृप फिरि करवट लीन्ह।
सचिव रामआगमन कहि, विनय समयसम कीन्ह॥

चौपाई

अवनिप अकनि राम पगु धारे। धरि धीरजु तब नयन उघारे॥
सचिव सँभारि राउ बैठारे। चरन परत नृप रामु निहारे॥
लिये सनेह विकल उर लाई। गई मनि मनहुँ फनिक फिरिपाई॥
रामहिं चितइ रहेउ नरनाहू। चला विलोचन वारि प्रवाहू॥
सोक विवस कछु कहइ न पारा। हृदय लगावत वारहिँ वारा॥
विधिहि मनाव राउ मनमाहीं। जेहि रघुनाथ न कानन जाहीं॥

अस मन गुनइ राउ नहिँ बोला। पीपर-पात-सरिस मन डोला॥
रघुपति पितहि प्रेम बस जानी। पुनि कछु कहिहि मातु अनुमानी॥
देस काल अवसर अनुसारी। बोले बचन बिनीत बिचारी॥
तात कहउँ कछु करउँ ढिठाई। अनुचित छमउ जानि लरिकाई॥
अति-लघु-बात लागि दुख पावा। काहु न मोहि कहि प्रथम जनावा॥
देखि गोसाइँहिं पूछिउँ माता। सुनि प्रसंगु भये सीतल गाता॥

दोहा

मंगलसमय सनेहबस, सोच परिहरिय तात।
आयसु देइय हरषि हिय, कहि पुलके प्रभुगात॥

चौपाई

धन्य जनम जगतीतल तासू। पितहि प्रमोदु चरित सुनि जासू॥
चारि पदारथ करतल ता के। प्रिय पितु मातु प्राण सम जाके॥
आयसु पालि जनम फल पाई। ऐहउँ बेगहि होइ रजाई॥
बिदा मातु सन आवउँ माँगो। चलिहउँ बनहिँ बहुरि पग लागी॥
अस कहि रामु गवन तब कीन्हा। भूप सोकबस उतरु न दीन्हा॥
नगर व्यापि गइ बात सुतीछी। छुवत चढ़ी जनु सब तन बीछी॥
सुनि भये बिकल सकल नरनारी। बेलि बिटप जिमि देखि दवारी॥
जो जहँ सुनइ धुनइ सिरु सोई। बड़ बिषाद नहिं धीरज होई॥

दोहा

मुख सुखाहिँ लोचन स्रवहिँ, सोक न हृदय समाइ।
मनहुँ करुन - रस - कटकई, उतरी अवध बजाय॥

चौपाई

मिलहि माँझ बिधि बात बिगारी। जहँ तहँ देहिं केकइहि गारी॥
एहि पापिनहि बूझ का परेऊ। छाइ भवन पर पावक धरेऊ॥

सदा राम एहि प्रान-समाना। कारन कवन कुटिलपनु ठाना॥
सत्य कहहिँ कवि नारि-सुभाऊ। सब विधि अगम अगाध दुराऊ॥

दोहा

काह न पावक जारि सक, का न समुद्र समाइ।
का न करइ अवला प्रवल, केहि जग काल न खाइ॥

चौपाई

का सुनाइ विधि काह सुनावा। का देखाइ चह काह दिखावा॥
विप्रवधू कुलमान्य जठेरी। जे प्रिय परम कैकेयी केरी॥
लगीँ देन सिख सीलु सराही। वचन वानसम लागहिँ ताही॥
भरत न मोहि प्रिय रामसमाना। सदा कहहु यह सब जग जाना॥
करहु राम पर सहज सनेहू। केहि अपराध आजु वन देहू॥
कबहुँ न कीयहु सवति आरेसू। प्रीति प्रतीति जान सब देसू॥
कौसल्या अब काह विगारा। तुम्ह जेहि लागि वज्र पुर पारा॥

दोहा

सीय कि पिय सँग परिहरिहि, लषनु कि रहिहहिँ धाम।
राजु कि भूँजव भरत पुर, नृपु कि जिइहि बिनु राम॥

चौपाई

अस विचारि जिय छाँड़हु कोहू। सोक कलङ्क कोठि जनि होहू॥
भरतहिँ अवसि देहु जुवराजू। कानन काह राम कर काजू॥
नाहिन राम राज के भूखे। धरमधुरीन विषयरस रूखे॥
गुरुगृह वसहिँ राम तजि गेहू। नृप सन अस वर दूसर लेहू॥
राम सरिस सुत कानन जोगू। काह कहिहिं सुनि तुम्ह कहँ लोगू॥
जौं न लगिहहु कहे हमारे। नहिँ लागिहि कछु हाथ तुम्हारे॥

जौं परिहास कीन्हि कछु होई। तौ कहि प्रगट जनावहु सोई॥
उठहु बेगि सोइ करहु उपाई। जेहि बिधि सोक कलङ्क नसाई॥

सोरठा

सखिन्ह सिखावन दीन्ह, सुनत मधुर परिनाम हित।
तेहि कछु कान न कीन्ह, कुटिल प्रबोधी कूबरी॥

चौपाई

ब्याधि असाधि जानि तिन्ह त्यागी। चलीं कहति मतिमंद अभागी॥
राज करत यह दैव बिगोई। कीन्हेसि अस जस करइ न कोई॥
एहि बिधि बिलपहिँ पुर-नरनारी। देहिं कुचालिहिँ कोटिक गारी॥
अति बिषादबस लोग लुगाईँ। गये मातु पहिँ राम गोसाईँ॥
रघु-कुल-तिलक जोरि दोउ हाथा। मुदित मातुपद नायउ माथा॥
दीन्हि असीस लाइ उर लीन्हे। भूषन बसन निछावरि कीन्हे॥
बार बार मुख चुंबति माता। नयन नेहजलु पुलकित गाता॥
गोद राखि पुनि हृदय लगाये। स्रवत प्रेमरस पयद सुहाये॥
सादर सुन्दर बदन निहारी। बोली मधुर बचन महतारी॥
कहहु तात जननी बलिहारी। कबहिँ लगन मुद-मंगल-कारी॥
सुकृत सील सुख सीव सुहाई। जनम लाभ कइ अवधि अघाई॥

दोहा

जेहि चाहत नरनारि सब, अति आरत एहि भाँति।
जिमि चातक चातकि त्रिषित, बृष्टि सरद रितु स्वाति॥

चौपाई

तात जाउँ बलि बेगि नहाहू। जो मन भाव मधुर कछु खाहू॥
पितु समीप तब जायहु भैया। भइ बड़ बारि जाइ बलि मैया॥

मातु वचन सुनि अति अनुकूला। जनु सनेह सुरतरु के फूला॥
सुख मकरंद भरे श्रियमूला। निरखि राम-मन-भँवर न भूला॥
धर्म - धुरीन धरम-गति जानी। कहेउ मातु सन अति-मृदु-बानी॥
पिता दीन्ह मोहि काननराजू। जहँ सब भाँति मोर बड़ काजू॥
आयसु देहि मुदितमन माता। जेहि मुद मंगल कानन जाता॥
जनि सनेह बस डरपसि भोरे। आनँदु अम्ब अनुग्रह तोरे॥

दोहा

बरष चारि दस बिपिन बसि, करि पितु-वचन प्रमान।
आइ पाँय पुनि देखिहउँ, मन जनि करसि मलान॥

चौपाई

वचन विनीत मधुर रघुवर के। सर सम लगे मातु-उर करके॥
सहमि सूखि सुनि सीतल बानी। जिमि जवास पर पावस पानी॥
कहि न जाय कछु हृदय विषादू। मनहुँ मृगी सुनि केहरिनादू॥
नयन सजल तन थरथर काँपी। माँजहि खाइ मीन जनु माँपी॥
धरि धीरज सुतवदन निहारी। गदगद वचन कहति महतारी॥
तात पितहि तुम्ह प्रानपियारे। देखि मुदित नित चरित तुम्हारे॥
राज देन कहँ सुभ दिन साधा। कहेउ जान बन केहि अपराधा॥
तात सुनावहु मोहि निदानू। को दिन-कर-कुल भयउ कृसानू॥

दोहा

निरखि रामरुख सचिवसुत, कारन कहेउ बुझाइ।
सुनि प्रसँग रहि मूक जिमि, दसा बरनि नहिँ जाइ॥

चौपाई

राखि न सकइ न कहि सक जाहू। दुहू भाँति उर दारुन दाहू॥
लिखत सुधाकर गा लिखि राहू। विधिगति बाम सदा सब काहू॥

धरम सनेह उभय मति घेरी। भइ गति साँप छछुंदर केरी॥
राखउँ सुतहिँ करउँ अनुरोधू। धरम जाइ अरु बंधु बिरोधू॥
कहउँ जान बन तौ बड़ि हानी। संकट-सोच-बिवस भइ रानी॥
बहुरि समुझि तियधरम सयानी। राम भरत दोउ सुत सम जानी॥
सरल सुभाउ राममहतारी। बोली बचन धीर धरि भारी॥
तात जाउँ बलि कीन्हेउ नीका। पितुआयसु सब धरमक टीका॥

दोहा

राज देन कहि दीन्ह बन, मोहि न सो दुखलेसु।
तुम्ह बिनु भरतहिँ भूपतिहि, प्रजहि प्रचंड कलेसु॥

चौपाई

जौं केवल पितु आयसु ताता। तौ जनि जाहु जानि बड़ि माता॥
जौं पितु मातु कहेउ बन जाना। तौ कानन सत अवध समाना॥
पितु बनदेव मातु बनदेवी। खग मृग चरन सरोरुह सेवी॥
अंतहु उचित नृपहि बनवासू। बय बिलोकि हिय होइ हरासू॥
बड़भागी बन अवध अभागी। जो रघु-बंस-तिलक तुम्ह त्यागी॥
जौं सुत कहउँ संग मोहि लेहू। तुम्हरे हृदय होइ सन्देहू॥
पूत परमप्रिय तुम्ह सब ही के। प्रान प्रान के जीवन जी के॥
ते तुम्ह कहहु मातु बन जाऊँ। मैं सुनि बचन बैठि पछिताऊँ॥

दोहा

यह बिचारि नहिं करउँ हठ, झूँठ सनेह बढ़ाइ।
मानि मातु कर नात बलि, सुरति बिसरि जनि जाइ॥

चौपाई

देव पितर सब तुम्हहिँ गोसाईं। राखहु नयन पलक की नाईं॥
अवधि अंबु प्रियपरिजन मीना। तुम्ह करुनाकर धरमधुरीना॥

अस बिचारि सोइ करहु उपाई। सबहिँ जियत जेहि भेंटहु आई॥
जाहु सुखेन बनहिँ बलि जाऊँ। करि अनाथ जन परिजन-गाऊँ॥
सब कर आजु सुकृतफल बीता। भयउ कराल काल विपरीता॥
बहुविधि विलपि चरन लपटानी। परम अभागिनि आपुहि जानी॥
दारुन-दुसह-दाह उर व्यापा। बरनि न जाइ विलाप कलापा॥
राम उठाइ मातु उर लाई। कहि मृदुवचन बहुरि समुझाई॥

दोहा

समाचार तेहि समय सुनि, सीय उठी अकुलाइ।
जाइ सासु पद-कमल-जुग, बंदि बैठि सिरु नाइ॥

चौपाई

दीन्ह असीस सासु मृदुबानी। अति सुकुमारि देखि अकुलानी॥
तात सुनहु सिय अति सुकुमारी। सासु-ससुर-परिजनहिँ पियारी॥
सोइ सिय चलन चहति बन साथा। आयसु काह होइ रघुनाथा॥
सिय बन बसिहि तात केहि भाँती। चित्रलिखित कपि देखि डराती॥
अस विचारि जस आयसु होई। मैं सिख देउँ जानकिहि सोई॥
जौं सिय भवन रहइ कह अंबा। मोहि कहँ होइ प्रान अवलम्बा॥
सुनि रघुबीर मातु प्रिय-बानी। सील सनेह सुधा जनु सानी॥

दोहा

कहि प्रियवचन विवेकमय, कीन्ह मातु परितोष।
लगे प्रबोधन जानकिहि, प्रगटि बिपिन गुन दोष॥

चौपाई

मातु समीप कहत सकुचाहीं। बाेले समउ समुझि मनमाहीं॥
राजकुमारि सिखावन सुनहू। आन भाँति जिय जन कछु गुनहू॥

आपन मोर नीक जौं चहहू। वचन हमार मानि गृह रहहू॥
आयसु मोर सासु सेवकाई। सबविधि भामिनि भवन भलाई॥
एहि तें अधिक धरमु नहिँ दूजा। सादर सासु-ससुर-पद-पूजा॥
जब जब मातु करिहि सुधि मोरी। होइहि प्रेमविकल मतिभोरी॥
तब तब तुम्ह कहि कथा पुरानी। सुन्दरि समुझायहु मृदुबानी॥
कहउँ सुभाय सपथ सत मोही। सुमुखि मातुहित राखउँ तोही॥

दोहा

गुरु-स्नुति-सम्मत धरमफल, पाइअ बिनहिँ कलेस।
हठवस सब संकट सहे, गालव नहुष नरेस॥

चौपाई

मैं पुनि करि प्रमान पितु बानी। वेगि फिरब सुनि सुमुखि सयानी॥
दिवस जात नहिँ लागिहिँ बारा। सुन्दरि सिखवन सुनहु हमारा॥
जौं हठ करहु प्रेमवस बामा। तौ तुम्ह दुख पाउब परिनामा॥
कानन कठिन भयंकर भारी। घोर घाम हिम बारि बयारी॥
कुस कंटक मगु काँकर नाना। चलब पयादेहिँ बिनु पदत्राना॥
चरन-कमल मृदु मंजु तुम्हारे। मारग अगम भूमिधर भारे॥
कन्दर खोह नदी नद नारे। अगम अगाध न जाहिँ निहारे॥
भालु बाघ बृक केहरि नागा। करहिँ नाद सुनि धीरज भागा॥

दोहा

भूमि-सयन बलकल-बसन, असन कंद-फल-मूल।
ते कि सदा सब दिन मिलहिँ, समय समय अनुकूल॥

चौपाई

नर-अहार रजनीचर चरहीँ। कपट वेष विधि कोटिक करहीँ॥
लागइ अति पहार कर पानी। बिपिन बिपति नहिँ जाइ बखानी॥

ब्याल कराल विहँग बन घोरा। निसि-चर-निकर नारि-नर-चोरा ॥
डरपहिं धीर गहन सुधि आये। मृगलोचनि तुम्ह भीरु सुभाये ॥
हँसगवनि तुम्ह नहिं बनजोगू। सुनि अपजस मोहि देइहि लोगू ॥
मानस-सलिल-सुधा प्रतिपाली। जिअइ कि लवन-पयोधि मराली ॥
नव-रसाल-वन विहरनसीला। सोह कि कोकिल विपिन करीला ॥
रहहु भवन अस हृदय विचारी। चंदबदनि दुख कानन भारी ॥

दोहा

सहज सुहृद-गुरु-स्वामि-सिख, जो न करइ सिर मानि।
सो पछिताइ अघाइ उर, अवसि होइ हितहानि ॥

चैापाई

सुनि मृदु वचन मनोहर पिय के। लोचन ललित भरे जल सिय के ॥
उतरु न आव विकल वैदेही। तजन चहत सुचि स्वामि सनेही ॥
बरबस रोकि विलोचनवारी। धरि धीरज उर अवनि-कुमारी ॥
लागि सासु-पग कह कर जोरी। छमड देवि बड़ि अविनय मोरी ॥
दीन्ह प्रानपति मोहि सिख सोई। जेहि विधि मोर परमहित होई ॥
मैं पुनि समुझि दीखि मन माहीं। पिय-वियोग-सम दुख जगनाहीं ॥

दोहा

प्राननाथ करुनाअतन, सुन्दर सुखद सुजान।
तुम्ह विनु-रघु-कुल-कुमुद-विधु, सुरपुर नरक समान ॥

चैापाई

मातु पिता भगिनी प्रिय भाई। प्रिय परिवार सुहृद समुदाई ॥
सासु ससुर गुरु सुजन सहाई। सुत सुंदर सुसील सुखदाई ॥
जहँ लगि नाथ नेह अरु नाते। पिय विनु तियहि तरनि ते ताते ॥
तन धन धाम धरनि पुरराजू। पतिविहीन सब सोक समाजू ॥

भोग रोग सम भूषन भारू। जम-जातना - सरिस सँसारू॥
प्राननाथ तुम्ह बिनु जग माहीं। मो कहँ सुखद कतहुँ कछु नाहीं॥
जिअ बिनु देह नदी बिनु बारी। तइसिअ नाथ पुरुष बिनु नारी॥
नाथ सकल सुख साथ तुम्हारे। सरद-बिमल-बिधु-बदन निहारे॥

दोहा

खग-मृग परिजन नगर बन, बलकल बिमल दुकूल।
नाथ साथ सुर-सदन-सम, परनसाल सुख-मूल॥

चौपाई

बनदेवी बनदेव उदारा। करिहहिं सासु-ससुर-सम-सारा॥
कुस-किसलय-साथरी सुहाई। प्रभुसँग मंजु मनोजतुराई॥
कन्दमूल फल अमिय अहारू। अवध-सौध-सत-सरिस पहारू॥
छिनु छिनु प्रभु-पद-कमलबिलोकी। रहिहहुँ मुदित दिवस जिमि कोकी॥
बनदुख नाथ कहे बहुतेरे। भय बिषाद परिताप घनेरे॥
प्रभु-बियोग लव-लेस - समाना। सब मिलि होहिं न कृपानिधाना॥
असजिय जानि सुजान-सिरोमनि। लेइय संग मोहि छाड़िअ जनि॥
बिनती बहुत करउँ का स्वामी। करुनामय उर-अन्तर-जामी॥

दोहा

राखिअ अवध जो अवधि लगि, रहत जानि अहि प्रान।
दीनबंधु सुन्दर सुखद, सील-सनेह - निधान॥

चौपाई

मोहि मग चलत न होइहि हारी। छिनुछिनु चरनसरोज निहारी॥
सबहिं भाँति पिय सेवा करिहउँ। मारगजनितसकल स्रमहरिहउँ॥
पायँ पखारि बैठ तरुछाहीं। करिहउँ बाउ मुदित मन माहीं॥
स्रम-कन-सहित स्याम तनु देखे। कहँ दुखसमउ प्रानपति पेखे॥

सम महि तृन-तरु पल्लव डासी । पाय पलोटिहि सब निसि दासी ॥
बार बार मृदु मूरति जोही । लागिहि ताति बयारि न मोही ॥
को प्रभुसँग मोहि चितवनि हारा । सिंघवधुहि जिमि ससक सियारा॥
मैं सुकुमारि नाथ बनजोगू । तुम्हहि उचित तप मो कहँ भोगू ॥

दोहा

ऐसेउ बचन कठोर सुनि, जौं न हृदय बिलगान ।
तौ प्रभु-बिषम-बियोग दुख, सहिहहिँ पाँवर प्रान ॥

चौपाई

अस कहि सीय बिकल भइ भारी । बचन बियोग न सकी सँभारी ॥
देखि दसा रघुपति जिय जाना । हठि राखे नहिँ राखिहि प्राना ॥
कहेउ कृपालु भानु-कुल-नाथा । परिहरि सोच चलहु बन साथा ॥
नहिँ बिषाद कर अवसर आजू । बेगि करहु बन-गवन-समाजू ॥
राम प्रबोध कीन्ह बिधि नाना । समउ सनेह न जाय बखाना ॥
तब जानकी सासुपग लागी । सुनिय माय मैं परम अभागी ॥
सेवा समय दैव बन दीन्हा । मोर मनोरथ सुफल न कीन्हा ॥
तजब छोभ जनि छाड़िअ छोहू । करम कठिन कछु दोष न मोहू ॥
सुनि सियबचन सासु अकुलानी । दसा कवनि बिधि कहउँ बखानी
बारहिँ बार लाइ उर लीन्ही । धरि धीरज सिख आसिषदीन्ही॥
अचल होउ अहिवात तुम्हारा । जब लगि गंग-जमुन-जल धारा ॥
समाचार जब लछिमन पाये । ब्याकुल बिलखबदन उठि धाये ॥
कंप पुलक तन नयन सनीरा । गहे चरन अतिप्रेम अधीरा ॥
कहि न सकत कछु चितवत ठाढे । मीन दीन जनु जल ते काढे ॥
सोच हृदय बिधि का होनिहारा । सब सुख सुकृत सिरान हमारा ॥
मो कहँ काह कहब रघुनाथा । रखिहहिँ भवनकिलेइहहिंसाथा ॥
राम बिलोकि बँधु करजोरे । देह गेह सब सन तृन तोरे ॥

बोले बचन राम नयनागर। सील-सनेह-सरल-सुख-सागर॥
तात प्रेम बस जनि कदराहू। समुझि हृदय परिनाम उछाहू॥

दोहा

मातु-पिता-गुरु-स्वामि-सिख, सिर धरि करहिँ सुभाय।
लहेउ लाभ तिन्ह जन्म कर, नतरु जनम जग जाय॥

चौपाई

अस जिय जानि सुनहु सिख भाई। करहु मातु-पितु-पद सेवकाई॥
भवन भरत रिपुसूदनु नाहीं। राउ वृद्ध मम दुख मन माहीं॥
मैं बन जाउँ तुमहिं लेइ साथा। होइ सबहि विधि अवध अनाथा॥
गुरु पितु मातु प्रजा परिवारू। सब कहँ परइ दुसह-दुख-भारू॥
रहहु करहु सब कर परितोषू। न तरु तात होइहि बड़ दोषू॥
जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी। सो नृप अवसि नरक अधिकारी॥
रहहु तात असि नीति बिचारी। सुनत लषन भये व्याकुल भारी॥
सिअरे बचन सूखि गये कैसे। परसत तुहिन तामरस जैसे॥

दोहा

उतर न आवत प्रेमवस, गहे चरन अकुलाइ।
नाथ दासु मैं स्वामि तुम्ह, तजहु तो कहा बसाइ॥

चौपाई

दीन्हि मोहि सिख नीक गोसाईं। लागि अगम अपनी कदराईं॥
नर-वर धीर धरम-धुर-धारी। निगम नीति कहँ ते अधिकारी॥
मैं सिसु प्रभु-सनेह प्रतिपाला। मदर मेरु कि लेहिं मराला॥
गुरु पितु मातु न जानउँ काहू। कहउँ सुभाउ नाथ पतिआहू॥
जहँ लगि जगत सनेह सगाई। प्रीति प्रतीति निगम निजु गाई॥
मोरे सबइ एक तुम्ह स्वामी। दीनबन्धु उर-अन्तर-जामी॥

धरमनीति उपदेसिअ ताही। कीरति-भूति-सुगति-प्रिय जाही॥
मन-क्रम-वचन-चरनरत होई। कृपासिंधु परिहरिअ कि सोई॥

दोहा

करुनासिंधु सुबंधु के, सुनि मृदुवचन बिनीत।
समुझाये उर लाइ प्रभु, आनि सनेह सभीत॥

चौपाई

माँगहु बिदा मातु सन जाई। आवहु बेगि चलहु बन भाई॥
मुदित भये सुनि रघुबर बानी। भयेउ लाभ बड़ गइ बड़ि हानी॥
हरषित हृदय मातु पहिं आये। मनहुँ अंध पुनि लोचन पाये॥
माँगत बिदा सभय सकुचाहीं। जाइ संग बिधि कहिहि कि नाहीं॥
धीरज धरेउ कुअवसर जानी। सहज सुहृद बोली मृदुबानी॥
तात तुम्हारि मातु बैदेही। पिता रामु सब भाँति सनेही॥
अवध तहाँ जहँ रामनिवासू। तहइँ दिवसु जहँ भानुप्रकासू॥
जौं पै सीय रामु बनु जाहीं। अवध तुम्हार काज कछु नाहीं॥
गुरु पितु मातु बंधु सुर साईं। सेइअहि सकल प्रान की नाईं॥
राम प्रानप्रिय जीवन जी के। स्वारथरहित सखा सब ही के॥
पूजनीय प्रिय परम जहाँ ते। सब मानिअहि राम के नाते॥
अस जिय जानि संग बन जाहू। लेहु तात जग जीवन लाहू॥

दोहा

भूरि भागभाजन भयहु, मोहि समेत बलि जाउँ।
जौं तुम्हरे मन छाड़ि छल, कीन्ह रामपद ठाउँ॥

चौपाई

पुत्रवती जुवती जग सोई। रघु-पति-भगत जासु सुतु होई॥
नतरु बाँझ भलि बादि बिआनी। रामबिमुख सुत तें हित हानी॥

तुम्हरेहि भाग राम बन जाहीँ । दूसर हेतु तात कछु नाहीँ ॥
सकल सुकृत कर बड़ फल एहू । राम-सीय-पद सहज सनेहू ॥
राग रोष इरिषा मद मोहू । जनि सपनेहुँ इन्हके बस होहू ॥
सकल प्रकार विकार बिहाई । मन क्रम बचन करेहु सेवकाई ॥
तुम्ह कहँ बन सब भाँति सुपासू । सँग पितु मातु राम सिय जासू ॥
जेहि न रामु बन लहहिँ कलेसू । सुत सोइ करेहु इहइ उपदेसू ॥

सोरठा

मातु-चरन सिर नाइ, लषन चले संकित हृदय ।
बागुर बिषम तोराइ, मनहुँ भाग मृग भागबस ॥

चौपाई

गये लषन जहँ जानकिनाथू । भे मन मुदित पाइ प्रियसाथू ॥
बन्दि राम-सिय-चरन सुहाये । चले संग नृपमन्दिर आये ॥
सिय समेत दोउ तनय निहारी । व्याकुल भयउ भूमिपति भारी ॥

दोहा

सीय सहित सुत सुभग दोउ, देखि देखि अकुलाइ ।
बारहिँ बार सनेहबस, राउ लेइ उर लाइ ॥

चौपाई

सकइ न बोलि बिकल नरनाहू । सोक जनित उर दारुन दाहू ॥
नाइ सीस पद अति अनुरागा । उठि रघुबीर बिदा तब माँगा ॥
पितु असीस आयसु मोहिँ दीजै । हरष समय बिसमउ* कत कीजै ॥
तात किये प्रिय प्रेमप्रमादू । जस जग जाइ होइ अपबादू ॥
सुनि सनेहबस उठि नरनाहा । बैठारे रघुपति गहि बाहा ॥
सुनहु तात तुम्ह कह मुनि कहहीँ । राम चराचर-नायक अहहीँ ॥

* यहाँ बिस्मय से शोक का अभिप्राय है ।

सुभ अरु असुभ करम अनुहारी। ईसु देइ फल हृदय विचारी॥
करइ जो करम पाव फल सोई। निगम नीति अस कह सब कोई॥

दोहा

अउर करइ अपराध कोउ, अउर पाव फल भोगु।
अति विचित्र भगवंतगति, को जग जानइ जोगु॥

चौपाई

राय राम राखन हित लागी। वहुत उपाय किये छल त्यागी॥
लखा राम रुख रहत न जाने। धरमधुरंधर धीर सयाने॥
तब नृप सीय लाइ उर लीन्ही। अतिहित वहुत भाँतिसिखदीन्ही॥
कहि वन के दुख दुसह सुनाये। सासु ससुर पितु सुख समुझाये॥
सियमन रामचरन अनुरागा। घरु न सुगम वन विषम न लागा॥
अउरउ सवहि सीय समुझाई। कहि कहि विपिन विपतिअधिकाई॥
सचिवनारि गुरुनारि सयानी। सहित सनेह कहहिं मृदुवानी॥
तुम कहँ तौ न दीन्ह वनवासू। करहुजोकहहिं ससुर गुरु-सासू॥

दोहा

सिख सीतलि हित मधुर मृदु, सुनि सीतहि न सोहानि।
सरद-चन्द-चाँदनि लगत, जनु चकई अकुलानि॥

चौपाई

सीय सकुचवस उतर न देई। सो सुनि तमकि उठी कैकेई॥
मुनि-पट-भूषन भाजन आनी। आगे धरि वोली मृदुवानी॥
नृपहिं प्रानप्रिय तुम्ह रघुवीरा। सील सनेह न छाँड़िहि भीरा॥
सुकृत सुजस परलोक नसाऊ। तुम्हहिं जान वन कहिहिनकाऊ॥
अस विचारि सोइ करहु जो भावा। राम जननिसिखसुनि सुख पावा॥
भूपहि वचन वानसम लागे। करहिं न प्रान पयान अभागे॥

लोग बिकल मुरछित नरनाहू। काह करिय कछु सूझ न काहू॥
राम तुरत मुनिबेष बनाई। चले जनक जननिहिं सिरु नाई॥

दोहा

सजि बन-साज-समाज सब, बनिता - बंधु - समेत।
बंदि बिप्र-गुरु-चरन प्रभु, चले करि सबहि अचेत॥

श्रृंगवेरपुर में श्रीरामचन्द्र जी

[श्रीरामचन्द्र जी, लक्ष्मण जी और सीता जी को साथ लेकर वन को चले हैं। साथ में सुमंत्र हैं। ये सब श्रृङ्गवेरपुर में पहुँचते हैं। इसके बाद की कथा नीचे के अवतरण में दी गई है।]

चौपाई

सीता सचिव सहित दोउ भाई। सृंगबेरपुर पहुँचे जाई॥
उतरे राम देवसरि देखी। कीन्ह दंडवत हरषु बिसेखी॥
लषन सचिव सिय कीन प्रनामा। सबहिं सहित सुख पायउ रामा॥
गंग सकल-मुद-मंगल-मूला। सब सुखकरनि हरनिसब सूला॥
मज्जनु कीन्ह पथस्रम गयऊ। सुचिजल पियत मुदित मन भयऊ॥
यह सुधि गुह निषाद जब पाई। मुदित लिए प्रिय बन्धु बोलाई॥
लिय फलमूल भेंट भरि भारा। मिलन चलेउ हिय हरष अपारा॥
करि दंडवत भेंट धरि आगे। प्रभुहिं बिलोकत अति अनुरागे॥
सहज-सनेह-बिबस रघुराई। पूछी कुसल निकट बैठाई॥
नाथ कुसल पदपंकज देखे। भयउँ भागभाजन जन लेखे॥
देव धरनि-धन-धाम तुम्हारा। मैं जन नीच सहित परिवारा॥
कृपा करिय पुर धारिय पाऊ। थापिय जन सब लोग सिहाऊ॥
कहेउ सत्य सब सखा सुजाना। मोहि दीन्ह पितु आयसु आना॥

दोहा

वरष चारि दस बास बन, मुनि-व्रत-वेष-अहारु।
ग्रामवास नहिँ उचित सुनि, गुहहि भयउ दुखभारु॥

चौपाई

लेइ रघुनाथहि ठाउँ देखावा। कहेउ राम सब भाँति सुहावा॥
सुचि फल मूल मधुर मृदु जानी। दोना भरि भरि राखेसि आनी॥

दोहा

सिय-सुमन्त्र-भ्राता-सहित, कन्दमूल फल खाइ।
सयन कीन्ह रघु-वंस-मणि, पाय पलोटत भाइ॥

चौपाई

उठे लषन प्रभु सोवत जानी। कहि सचिवहि सोवन मृदुबानी॥
कछुक दूरि सजि बानसरासन। जागन लगे वैठि बीरासन॥
सकल सौच करि राम नहावा। सुचि सुजान वटछीर मँगावा॥
अनुजसहित सिर जटा बनाये। देखि सुमंत्र नयन जल छाये॥
मंत्रिहि राम उठाय प्रवोधा। तात धरममत तुम्ह सब सोधा॥
तुम्ह सन तात बहुत का कहउँ। दिये उतरु फिरि पातक लहउँ॥
तुम्ह पुनि पितुसम अतिहित मोरे। विनती करउँ तात कर जोरे॥
सब विधि सोइ करतव्य तुम्हारे। दुख न पाव नृप सोच हमारे॥
सुनि रघु-नाथ - सचिव - संवादू। भयउ सपरिजन विकल निषादू॥
बरबस राम सुमंत्र पठाये। सुरसरितीर आप तब आये॥
माँगी नाव न केवटु आना। कहइ तुम्हार मरमु मैं जाना॥
चरन-कमल-रज कहँ सब कहई। मानुषकरनि मूरि कछु अहई॥
छुअत सिला भइ नारि सुहाई। पाहन तें न काठ कठिनाई॥
तरनिउँ मुनिघरनी होइ जाई। बाट परै मोरि नाव उड़ाई॥

एहि प्रतिपालउँ सब परिवारू। नहिँ जानउँ कछु अउर कवारू॥
जौं प्रभु पार अवसि गा चहहू। तो पदपदुम पखारन कहहू॥

छन्द

पदकमल धोइ चढ़ाइ नाव न नाथ उतराई चहउँ।
मोहिँ राम राउरि आन दसरथ-सपथ सब साँची कहउँ॥
बरु तीर मारहु लषन पै जब लगि न पायँ पखारिहउँ।
तब लगि न तुलसीदास नाथ कृपालु पारु उतारिहउँ॥

सोरठा

सुनि केवट के बैन, प्रेम लपेटे अटपटे।
बिहँसे करुना-ऐन, चितइ जानकी-लषन-तन॥

चौपाई

कृपासिन्धु बोले मुसुकाई। सोइ करु जेहि तव नाव न जाई॥
वेगि आनु जल पाँय पखारू। होत विलम्ब उतारहु पारू॥
जासु नाम सुमिरत एक बारा। उतरहिँ नर भवसिंधु अपारा॥
सोइ कृपालु केवटहि निहोरा। जेहि जग किय तिहुँ पगहुँ तेँ थोरा॥
केवट रामरजायसु पावा। पानि कठवता भरि लेइ आवा॥
अति आनन्द उमगि अनुरागा। चरन-सरोज पखारन लागा॥
बरषि सुमन सुर सकल सिहाहीँ। एहि सम पुन्यपुञ्ज कोउ नाहीँ॥

दोहा

पद पखारि जलपान करि, आपु सहित परिवार।
पितर पारु करि प्रभुहिँ पुनि, मुदित गयउ लेइ पार॥

चौपाई

उतरि ठाढ भये सुरसरि-रेता। सीय राम गुह लषन समेता॥
केवट उतरि दंडवत कीन्हा। प्रभुहि सकुच एहि नहिँ कछु दीन्हा॥

पियहिय की सिय जाननिहारी। मनिमुँदरी मन मुदित उतारी॥
कहेउ कृपालु लेहु उतराई। केवट चरन गहेउ अकुलाई॥
नाथ आजु मैं काह न पावा। मिटे दोष-दुख-दारिद दावा॥
बहुत काल मैं कीन्ह मजूरी। आजु दीन्ह विधि बनि भलि भूरी॥
अब कछु नाथ न चाहिय मोरे। दीनदयाल अनुग्रह तोरे॥
फिरती बार मोहिं जो देबा। सो प्रसाद मैं सिर धरि लेवा॥

दोहा

बहुत कीन्ह प्रभु लषन सिय, नहिं कछु केवटु लेइ।
बिदा कीन्ह करुनायतन, भगति बिमल बरु देइ॥

भरत और कौशल्या का संवाद

[सुमन्त जी लौट कर अयोध्या आये। महाराज दशरथ ने श्रीरामचन्द्र जी के वियोग में प्राण छोड़ दिये। अन्त में वसिष्ठ जी ने भरत और शत्रुघ्न को, जो कैकेय देश में थे, बुलवा भेजा। भरत जी आये हुए हैं। उन्होंने महारानी कैकेयी से सब हाल सुन लिया है। वे बड़े क्षुब्ध हो रहे हैं। अन्त में वे महारानी कौशल्या से मिलते हैं। इसके आगे का हाल इस अवतरण में दिया गया है।]

चौपाई

भरतहिं देखि मातु उठि धाई। मुरछित अवनि परी झँइ आई॥
देखत भरत विकल भये भारी। परे चरन तन दसा बिसारी॥
मातु तात कहँ देहि देखाई। कहँ सिय राम लषन दोउ भाई॥
कैकेइ कत जनमी जग माँझा। *जौं जनमी भइ काहे न बाँझा॥
कुलकलंक जेहि जनमेउ मोही। अपजस-भाजन प्रिय-जन-द्रोही॥
को त्रिभुवन मोहि सरिस अभागी। गति असि तोरि मातु जेहि लागी॥
पितु सुरपुर बन रघुबर केतू। मैं केवल सब अनरथ हेतू॥
धिग मोहि भयउँ बेनु-बन-आगी। दुसह दाह - दुख - दूषन-भागी॥

दोहा

मातु भरत के बचन मृदु, सुनि पुनि उठी सँभारि।
लिये उठाय लगाइ उर, लोचन मोचति बारि॥

---

* पाठान्तर—"जौं जनमित भइ काहे न बाँझा।"

चौपाई

सरल सुभाय मातु हिय लाये। अति हित मनहुँ राम फिरि आये॥
भेंटेउ वहुरि लषन - लघु-भाई। सोक सनेह न हृदय समाई॥
देखि सुभाउ कहत सब कोई। राममातु अस काहे न होई॥
माता भरत गोद बैठारे। आँसु पोंछि मृदु वचन उचारे॥
अजहुँ बच्छ वलि धीरज धरहू। कुसमउ समुझि सोक परिहरहू॥
जनि मानहु हिय हानि गलानी। काल-करम-गति अघटित जानी॥
काहुहिं दोसु देहु जनि ताता। भा मोहि सब विधि वाम विधाता॥
जो एतेहु दुख मोहि जियावा। अजहुँ को जानइ का तेहि भावा॥

दोहा

पितु-आयसु भूषन वसन, तात तजे रघुवीर।
विसमय हरष न हृदय कछु, पहिरे वलकल चीर॥

चौपाई

मुख प्रसन्न मन राग न रोषू। सबकर सब विधि करि परितोषू॥
चले विपिन सुनि सिय संग लागी। रहइ न राम-चरन-अनुरागी॥
सुनतहि लषन चले उठि साथा। रहहिं न जतन किये रघुनाथा॥
तब रघुपति सबही सिरु नाई। चले संग सिय अरु लघु भाई॥
राम लषन सिय बनहिं सिधाये। गइउँ न संग न प्रान पठाये॥
एहि सब भा इन्ह आँखिन्ह आगे। तउ न तजा तनु प्रान अभागे॥
मोहि न लाज निजनेह निहारी। राम सरिस सुत मैं महतारी॥
जिअइ मरइ भल भूपति जाना। मोर हृदय सत-कुलिस-समाना॥

दोहा

कौसल्या के वचन सुनि, भरत सहित रनिवासु।
व्याकुल विलपत राजगृह, मानहुँ सोकनिवासु।

चौपाई

विलपहिं विकल भरत दोउ भाई। कौसल्या लिये हृदय लगाई॥
भाँति अनेक भरत समुझाये। कहि विवेकमय वचन सुनाये॥
भरतहु मातु सकल समुझाई। कहि पुरान स्रुति कथा सुहाई॥
छलविहीन सुचि सरल सुवानी। बोले भरत जोरि जुगपानी॥
जे अघ मातु-पिता-सुत मारे। गाइगोठ महि-सुर-पुर जारे।
जे अघ निय बालक-बध कीन्हे। भीत महीपति माहुर दीन्हे॥
जे पातक उपपातक अहहीं। करम-वचन-मन-भवकविकहहीं॥
ते पातक मोहि होहु विधाता। जौं यहु होइ मोर मत माता॥

दोहा

जे परिहरि हरि-हर-चरन, भजहिं भूतगन घोर।
तिन्ह कइ गति मोहि देउ विधि, जौं जननी मत मोर॥

चौपाई

बेचहिं बेद धरम दुहि लेहीं। पिसुन पराय पाप कहि देहीं॥
कपटी कुटिल कलह प्रिय क्रोधी। बेदविदूषक विस्वविरोधी॥
लोभी लम्पट लोल लवारा। जे ताकहिं परधनु परदारा॥
पावउँ मैं तिन्ह कै गति घोरा। जो जननी यहु सम्मत मोरा॥
जे नहिं साधुसंग अनुरागे। परमारथपथ विमुख अभागे॥
जे न भजहिं हरि नरतनु पाई। जिन्हहिं न हरि-हर सुजस सुहाई॥
तजि स्रुतिपंथ बामपथ चलहीं। बञ्चक विरचि वेषु जग छलहीं॥
तिन्ह कइ गति मोहि संकर देऊ। जननी जौं यहु जानउ भेऊ॥

दोहा

मातु भरत के वचन सुनि, साँचे सरल सुभाय।
कहति रामप्रिय तात तुम्ह, सदा वचन मन काय॥

चौपाई

राम प्रान तें प्रान तुम्हारे। तुम्ह रघुपतिहि प्रान तें प्यारे॥
बिधु बिष चवइ स्रवइ हिमु आगी। होइ वारिचर वारिबिरागी॥
भये ग्यान बरु मिटइ न मोहू। तुम्ह रामहिं प्रतिकूल न होहू॥
मत तुम्हार एह जो जग कहहीं। सो सपनेहुँ सुख सुगति नलहहीं॥
अस कहि मातु भरत हिय लाये। थनपय स्रवहिं नयन जल छाये॥
करत बिलाप बहुत एहि भाँती। बैठेहि बीति गई सब राती॥

वसिष्ठ और भरत का संवाद

[भरत जी का आगमन सुनकर महर्षि वसिष्ठ जी आये। उन्होंने उनसे महाराज दशरथ के शव का दाह करवाया, फिर सब मन्त्रियों तथा नगर के मुख्य मुख्य पुरुषों की सभा की। सब ने भरत जी से राज्यग्रहण करने के लिये अनुरोध किया, किन्तु भरत जी नहीं माने। इस अवतरण में भरत जी तथा वसिष्ठ जी का वही संवाद है।]

चौपाई

सुदिन सोधि मुनिवर तब आये। सचिव महाजन सकल बोलाये॥
बैठे राजसभा सब जाई। पठये बोलि भरत दोउ भाई॥
भरत वसिष्ठ निकट बैठारे। नीति-धरम-मय-बचन उचारे॥
प्रथम कथा सब मुनिवर बरनी। कैकइ कुटिल कीन्हि जसि करनी॥
भूप धरमव्रत सत्य सराहा। जेहि तनु परिहरि प्रेम निवाहा॥
कहत राम-गुन-सील सुभाऊ। सजल नयन पुलकेउ मुनिराऊ॥
बहुरि लषन-सिय-प्रीति बखानी। सोक सनेह मगन मुनि ग्यानी॥

दोहा

सुनहु भरत भावी प्रबल, बिलखि कहेउ मुनिनाथ।
हानि लाभ जीवन मरन, जस अपजस बिधि हाथ॥

चौपाई

अस बिचारि केहि देइय दोषू। ब्यरथ काहि पर कीजिय रोषू॥
तात बिचार करहु मन माहीं। सोच योग दसरथ नृप नाहीं॥

सोचिय विप्र जो वेदविहीना। तजि निज धरम विषय लवलीना॥
सोचिय नृपति जो नीति न जाना। जेहि न प्रजा प्रिय प्रानसमाना॥
सोचिय वयसु* कृपिन धनवानू। जो न अतिथि सिवभगति सुजानू॥
सोचिय सूद्र विप्र अपमानी। मुखर मानप्रिय ग्यान गुमानी॥
सोचिय पुनि पतिबञ्चक नारी। कुटिल कलहप्रिय इच्छाचारी॥
सोचिय बटु निजब्रत परिहरई। जो नहिं गुरु आयसु अनुसरई॥

दोहा

सोचिय गृही जो मोहबस, करइ करमपथ त्याग।
सोचिय जती प्रपंचरत, बिगत बिवेक बिराग॥

चौपाई

वैखानस सोइ सोचन जोगू। तप बिहाइ जेहि भावइ भोगू॥
सोचिय पिसुन अकारन क्रोधी। जननि-जनक-गुरु-बंधु-बिरोधी॥
सब बिधि सोचिय पर-अपकारी। निज तनु पोषक निरदय भारी॥
सोचनीय सबही बिधि सोई। जो न छाँड़ि छल हरिजन होई॥
सोचनीय नहिं कोसलराऊ। भुवन चारिदस प्रगट प्रभाऊ॥
भयउ न अहइ न अब होनिहारा। भूप भरत जस पिता तुम्हारा॥
बिधि हरि हर सुरपति दिसिनाथा। बरनहिं सब दसरथ-गुन-गाथा॥

दोहा

कहहु तात केहि भाँति कोउ, करिहि बड़ाई तासु।
राम लषन तुम सत्रुहन, सरिस सुअन सुचि जासु॥

चौपाई

सब प्रकार भूपति बड़भागी। बादि बिषाद करिय तेहि लागी॥
एहि सुनि समुझि सोच परिहरहू। सिर धरि राजरजायसु करहू॥

---

* वयसु—वैश्य, बनिया।

राय राजपद तुम्ह कहँ दीन्हा । पितावचन फुर चाहिय कीन्हा ॥
तजे राम जेहि बचनहिँ लागी । तनु परिहरेउ रामबिरहागी ॥
नृपहिँ बचन प्रिय नहिँ प्रिय प्राना । करहु तात पितुबचन प्रमाना ॥
करहु सीस धरि भूपरजाई । है तुम्ह कहँ सब भाँति भलाई ॥
परसुराम पितुअग्या राखी । मारी मातु लोग सब साखी ॥
तनय जजातिह जोबन दयऊ । पितुअग्या अघ अजस न भयऊ ॥

दोहा

अनुचित उचित बिचारु तजि, जे पालहिँ पितु बैन ।
ते भाजन सुख सुजस के, बसहिँ अमरपति-ऐन ॥

चौपाई

अवसि नरेस बचन फुर करहू । पालहु प्रजा सोक परिहरहू ॥
सुरपुर नृप पाइहिँ उर तोषू । तुम कहँ सुकृत सुजसु नहिँ दोषू ॥
वेदविहित संमत सबही का । जेहि पितु देइ सो पावइ टीका ॥
करहु राज परिहरहु गलानी । मानहु मोर बचन हित जानी ॥
सुनि सुख लहब राम बैदेही । अनुचित कहब न पण्डित केही ॥
कौसल्यादि सकल महतारी । तेउ प्रजासुख होहिँ सुखारी ॥
प्रेम तुम्हार राम कर जानिहि । सो सब बिधि तुम सनभलमानिहि ॥
सौंपेहु राज राम के आये । सेवा करेहु सनेह सुहाये ॥

दोहा

कीजिय गुरुआयसु अवसि, कहहिँ सचिव कर जोरि ।
रघुपति आये उचित जस, तस तब करब बहोरि ॥

चौपाई

कौसल्या धरि धीरज कहई । पूत पथ्य गुरु आयसु अहई ॥
सो आदरिय करिय हित मानी । तजिय बिषादु कालगति जानी ॥

वन रघुपति सुरपुर नरनाहू। तुम्ह एहि भाँति तात कदराहू॥
परिजन प्रजा सचिव सब अंबा। तुम्हही सुत सब कहँ अवलंबा॥
लखि विधि वाम काल कठिनाई। धीरज धरहु मातु वलि जाई॥
सिर धरि गुरुआयसु अनुसरहू। प्रजा पालि पुर-जन-दुख हरहू॥
गुरु के वचन सचिव अभिनन्दन। सुने भरत हिय हित जनु चन्दन॥
सुनी वहोरि मातु मृदुवानी। सील-सनेह-सरल - रस सानी॥

छन्द

सानी सरल रस मातुवानी सुनि भरत व्याकुल भये।
लोचनसरोरुह स्रवत सींचत विरह उर अँकुर नये॥
सो दसा देखत समय तेहि विसरी सवहि सुधि देह की।
तुलसी सराहत सकल सादर सीवँ सहज सनेह की॥

सोरठा

भरत कमल करजोरि, धीर-धुरन्धर धीर धरि।
वचन अमिय जनु वोरि, देत उचित उत्तर सवहिँ॥

चौपाई

मोहि उपदेस दीन्ह गुरु नीका। प्रजा सचिव सम्मत सवही का॥
मातु उचित धरि आयसु दीन्हा। अवसि सीस धरि चाहउँ कीन्हा॥
गुरु पितु मातु स्वामि हित वानी। सुनि मन मुदित करिय भल जानी॥
उचित कि अनुचित किये विचारू। धरम जाइ सिर पातक भारू॥
तुम्हतउ देहु सरल सिख सोई। जो आचरत मोर हित होई॥
जद्यपि यह समुझत हउँ नीके। तदपि होत परितोषु न जी के॥
अव तुम्ह विनय मोरि सुन लेहू। मोहि अनुहरत सिखावन देहू॥
उत्तर देउँ छमउ अपराधू। दुखित-दोष-गुन गनहिँ न साधू॥

दोहा

पितु सुरपुर सिय राम बन, करन कहहु मोहि राज।
एहि तें जानहु मोर हित, कै आपन बड़ काज॥

चौपाई

हित हमार सिय-पति-सेवकाई। सो हरि लीन्ह मातु कुटिलाई॥
मैं अनुमानि दीख मन माहीं। आन उपाय मोर हित नाहीं॥
सोकसमाज राज केहि लेखे। लषन-राम-सिय-पद बिनु देखे॥
बादि बसन बिनु भूषन भारू। बादि बिरति बिनु ब्रह्मबिचारू॥
सरुज सरीर बादि बहु भोगा। बिनु हरिभगति जाय जप जोगा॥
जाय जीव बिनु देह सुहाई। बादि मोर सब बिनु रघुराई॥
जाउँ राम पहिं आयसु देहू। एकहि आंक मोर हित एहू॥
मोहि नृप करि भल आपन चहहू। सोउ सनेह जड़ता बस कहहू॥

दोहा

कैकेइ-सुअन कुटिल मति, रामबिमुख गतलाज।
तुम्ह चाहत सुख मोहबस, मोहिं से अधम के राज॥

चौपाई

कहउँ सांच सब सुनि पतियाहू। चाहिय धरम-सील नरनाहू॥
मोहि राज हठि देइहहु जबहीं। राजु रसातल जाइहि तबहीं॥
मोहि समान को पापनिवासू। जेहि लगि सीयराम बनवासू॥
मैं सठ सब अनरथ कर हेतू। बैठि बात सब सुनउँ सचेतू॥
बिनु रघुबीर बिलोकिय बासू। रहे प्राण सहि जग उपहासू॥
राम पुनीत बिषयरस रूखे। लोलुप भूमिभोग के भूखे॥
कहँ लगि कहउँ हृदय-कठिनाई। निदरि कुलिस जेहि लही बड़ाई॥

दोहा

कारन तें कारज कठिन, होइ दोष नहिं मोर।
कुलिस अस्थि तें उपल तें, लोह कराल कठोर॥

चौपाई

कैकेई-भव तनु अनुरागे। पावर प्रान अघाइ अभागे॥
जौं प्रिय विरह प्रान प्रिय लागे। देखब सुनब बहुत अब आगे॥
लषन-राम-सिय कहँ बन दीन्हा। पठइ अमरपुर पतिहित कीन्हा॥
लीन्ह विधवपन अपजसु आपू। दीन्हेउ प्रजहिं सोक सतापू॥
मोहि दीन्ह सुख सुजस सुराजू। कीन्ह कैकई सब कर काजू॥
यहि तें मोर काह अब नीका। तेहि पर देन कहहु तुम्ह टीका॥
कैकइ जठर जनमि जग माहीं। यह मोकहँ कछु अनुचित नाहीं॥
मोरि बात सब विधिहि बनाई। प्रजा पाँच कत करहु सहाई॥

दोहा

ग्रह ग्रहीत पुनि वातबस, तेहि पुनि बीछी मार।
ताहि पियाइय बारुनी, कहहु कवन उपचार॥

चौपाई

कैकेइ-सुअन जोग जग जोई। चतुर विरंचि दीन्ह मोहि सोई॥
दसरथ-तनय राम-लघु-भाई। दीन्हि मोहि विधि बादि बड़ाई॥
तुम्ह सब कहहु कढ़ावन टीका। राय रजायसु सब कहँ नीका॥
उतर देउँ केहि विधि केहि केही। कहहु सुखेन जथारुचि जेही॥
मोहि कुमातु समेत विहाई। कहहु कहिहि के कीन्ह भलाई॥
मो बिनु को सचराचर माहीं। जेहि सियराम प्रानप्रिय नाहीं॥
परम हानि सब कहँ बड़ लाहू। अदिन मोर नहिं दूषन काहू॥
संसय सील प्रेमबस अहहू। सबइ उचित सब जो कछु कहहू॥

दोहा

राममातु सुठि सरलचित, मो पर प्रेम बिसेखि ।
कहइ सुभाय सनेहबस, मोरि दीनता देखि ॥

चौपाई

गुरु बिबेक-सागर जग जाना । जिनहिं बिस्व कर-बदर-समाना ॥
मो कहँ तिलकसाज सज सोऊ । भा बिधिबिमुख बिमुख सबकोऊ ॥
परिहरि रामसीय जग माहीं । कोउ न कहहि मोर मति नाहीं ॥
सो मैं सुनब सहज सुख मानी । अंतहु कीच तहाँ जहँ पानी ॥
डर न मोहि जग कहहि कि पोचू । परलोकहु कर नाहिं न सोचू ॥
एकइ बड उर दुसह दुवारी । मोहिं लगि भे सिय राम दुखारी ॥
जीवनलाहु लषन भल पावा । सब तजि रामचरन मन लावा ॥
मोर जनम रघुबर बन लागी । झूठ काह पछिताउँ अभागी ॥

दोहा

आपनि दारुन दीनता, कहेउँ सबहिं सिरु नाइ ।
देखे बिनु रघु-नाथ-पद, जिय कै जरनि न जाइ ॥

चौपाई

आन उपाय मोहि नहिं सूझा । को जिय कै रघुबर बिनु बूझा ॥
एकहि आँक इहइ मन माहीं । प्रातकाल चलिहउँ प्रभु पाहीं ॥
जद्यपि मैं अनभल अपराधी । भइ मोहि कारन सकलउपाधी ॥
तदपि सरन सनमुख मोहि देखी । छमि सब करिहहिं कृपाबिसेखी ॥
सील सकुचि सुठि सरल सुभाऊ । कृपा - सनेह - सदन रघुराऊ ॥
अरिहुक अनभल कीन्ह न रामा । मैं सिसु सेवक जद्यपि बामा ॥
तुम्ह पै पाँच मोर भल मानी । आयसु आसिष देहु सुबानी ॥
जेहि सुनि बिनय मोहि जनुजानी । आवहिं बहुरि राम रजधानी ॥

दोहा

जद्यपि जनम कुमातु तें, मैं सठ सदा सदोस ।
आपन जानि न त्यागिहहिं, मोहि रघु-बीर-भरोस ॥

चौपाई

भरत वचन सब कहँ प्रिय लागे । राम - सनेह-सुधा जनु पागे ॥
लोग वियोग-विषम-विष दागे । मंत्र सबीज सुनत जनु जागे ॥
मातु सचिव गुरु पुर-नर-नारी । सकल सनेह विकल भये भारी ॥
भरतहिं कहहिं सराहि सराही । राम - प्रेम-मूरति - तनु आही ॥
तात भरत अस काहे न कहहू । प्रान-समान राम-प्रिय अहहू ॥
जो पावँरु अपनी जड़ताई । तुम्हहिं सुगाइ मातु-कुटिलाई ॥
सो सठ कोटिक पुरुष समेता । बसहिं कलप सत नरक निकेता ॥
अहि-अघ-अवगुनमनि नहिं गहई । हरइ गरल दुख दारिद दहई ॥

दोहा

अवसि चलिय वन राम जहँ, भरत मंत्र भल कीन्ह ।
सोक - सिंधु, बूड़त सबहिं, तुम्ह अवलंबनु दीन्ह ॥

शृंगवेरपुर में भरत

[जैसा कि अन्तिम प्रसङ्ग में कहा गया है कि, भरत जी ने श्रीरामचन्द्र जी से मिलने के लिए जाने का विचार किया है, तदनुसार वे अयोध्या नगर को योग्य कर्मचारियों के हाथ में छोड़ कर चले हैं। साथ में राजपरिवार, वसिष्ठ जी तथा कितने ही सैनिक और नागरिक भी हो लिये हैं। पहिले दिन तमसा नदी के तीर और दूसरे दिन गोमती नदी के तीर वास करके, वे तीसरे दिन शृङ्गवेरपुर पहुँचे हैं। वहाँ का हाल नीचे दिया जाता है।]

चौपाई

सईतीर बस चले बिहाने। शृङ्गवेरपुर सब नियराने॥
समाचार सब सुने निषादा। हृदय विचार करइ सविषादा॥
कारन कवन भरत बन जाहीं। है कछु कपटभाउ मन माहीं॥
जौं पै जिय न होति कुटिलाई। तौ कत लीन्हि संग कटकाई॥
जानहिं सानुज रामहिं मारी। करउँ अकंटक राज सुखारी॥
भरत न राजनीति उर आनी। तब कलंक अब जीवन हानी॥
सकल-सुरासुर जुरहिं जुझारा। रामहिं समर न जीतनिहारा॥
का आचरज भरत अस करहीं। नहिं विषवेलि अमियफल फरहीं॥

दोहा

अस विचार गुहँ ज्ञाति सन, कहेहु सजग सब होहु।
हथबाँसहु बोरहु तरनि, कीजिय घाटारोहु॥

चौपाई

होहु सँजोइल रोकहु घाटा। ठाटहु सकल मरइ के ठाटा॥
सनमुख लोह भरत सन लेऊँ। जियत न सुरसरि उतरन देऊँ॥
समर मरन पुनि सुर-सरि-तीरा। रामकाजु छनभंगु सरीरा॥
भरत भाइ नृप मैं जन नीचू। बड़े भाग असि पाइय मीचू॥
स्वामिकाज करिहउँ रन रारी। जस धवलिहउँ भुवन दसचारी॥
तजउँ प्रान रघुनाथ निहोरे। दुहूँ हाथ मुदमोदक मोरे॥
साधु समाज न जा कर लेखा। रामभगत महँ जासु न रेखा॥
जाय जियत जग सो महिभारू। जननी-जोवन-विटप-कुठारू॥

दोहा

विगत विषाद निषादपति, सबहिं बढ़ाइ उछाह।
सुमिरि राम माँगेउ तुरत, तरकस धनुष सनाह॥

चौपाई

वेगहि भाय सजहु सँजोऊ। सुनि रजाइ कदराइ न कोऊ॥
भलेहि नाथ सब कहहिं सहरषा। एकहिं एक बढ़ावहिं करषा॥
चले निषाद जोहारि जोहारी। सूर सकल रन रूचै रारी॥
सुमिरि राम पद पंकज पनही। भाथी बाँधि चढ़ाइन्ह धनुही॥
अँगरी पहिरि कूँड़ि सिर धरहीं। फरसा बाँस सेल सम करहीं॥
एक कुसल अति ओड़न खाँड़े। कूदहिँ गगन मनहुँ छिति छाँड़े॥
निज निज साज समाज बनाई। गुहराउतहिं जुहारे जाई॥
देखि सुभट सब लायक जाने। लेइ लेइ नाम सकल सनमाने॥

दोहा

भाइहु लावहु धोख जनि, आजु काज बड़ मोहि।
सुनि सरोष बोले सुभट, वीर अधीर न होहिं॥

चौपाई

रामप्रताप नाथ बल तोरे। करहिं कटकु बिनु भट बिनु घोरे॥
जीवत पाँउ न पाछे धरहीं। रुंड-मुंड-मय मेदिनि करहीं॥
दीख निषादनाथ भल टोलू। कहेउ बजाउ जुझाऊ ढोलू॥
इतना कहत छींक भइ बाँये। कहेउ सकुनिअन्ह खेत सुहाये॥
बूढ़ एक कह सगुन बिचारी। भरतहि मिलिय न होइहि रारी॥
रामहिं भरत मनावन जाहीं। सगुन कहइ अस बिग्रह नाहीं॥
सुनि गुह कहइ नीक कह बूढ़ा। सहसा करि पछिताहिं बिमूढ़ा॥
भरत-सुभाउ-सील बिनु बूझे। बड़ि हितहानि जानि बिनु जूझे॥

दोहा

गहहु घाट भट सिमिटि सब, लेउँ मरम मिलि जाइ।
बूझि मित्र अरि मध्य गति, तब तस करिहउँ आइ॥

चौपाई

लखउ सनेहु सुभाय सुहाये। बैर प्रीति नहिं दुरइ दुराये॥
अस कहि भेंट सँजोवन लागे। कंद मूल फल खग मृग माँगे॥
मीन पीन पाठीन पुराने। भरि भरि भार कहारन्ह आने॥
मिलन साजु सजि मिलन सिधाये। मंगलमूल सगुन सुभ पाये॥
देखि दूरि तें कहि निज नामू। कीन्ह मुनीसहिं दंड प्रनामू॥
जानि रामप्रिय दीन्ह असीसा। भरतहिं कहेउ बुझाइ मुनीसा॥
रामसखा सुनि स्यंदनु त्यागा। चले उतरि उमगत अनुरागा॥
गाउँ जाति गुह नाउँ सुनाई। कीन्ह जोहारु माथ महि लाई॥

दोहा

करत दंडवत देखि तेहि, भरत लीन्ह उर लाइ।
मनहुँ लषन सन भेंट भइ, प्रेम न हृदय समाइ॥

चौपाई

भेंटत भरत ताहि अतिप्रीती। लोग सिहाहिं प्रेम कै रीती॥
धन्य धन्य धुनि मंगलमूला। सुर सराहिं तेहि बरषहिं फूला॥
लोक वेद सब भाँतिहिं नीचा। जासु छाँह छुइ लेइय सींचा॥
तेहि भरि अंक राम लघु-भ्राता। मिलत पुलक परिपूरित गाता॥
राम राम कहि जे जमुहाहीं। तिन्हहिं न पाप पुंज समुहाहीं॥
एहि तो राम लाइ उर लीन्हा। कुलसमेत जग पावन कीन्हा॥
करमु-नास-जल सुरसरि परई। तेहि को कहहु सीस नहिं धरई॥
उलटा नाम जपत जग जाना। बालमीकि भये ब्रह्म समाना॥

दोहा

स्वपच सबर खस जमन जड़, पाँवर कोल किरात।
राम कहत पावन परम, होत भुवन विख्यात॥

चौपाई

नहिं अचरज जुग जुगचलि आई। केहि न दीन्ह रघुबीर बड़ाई॥
राम-नाम-महिमा सुर कहहीं। सुनिसुनि अवधलोगसुखलहहीं॥
रामसखहिं मिलि भरत सप्रेमा। पूछी कुसल सुमंगल खेमा॥
देखि भरत कर सील सनेहू। भा निषाद तेहि समय बिदेहू॥
सकुच सनेह मोद मन बाढ़ा। भरतहिं चितवत इकटक ठाढ़ा॥
धरि धीरज पद बन्दि बहोरी। विनय सप्रेम करत कर जोरी॥
कुसल मूल पदपंकज पेखी। मैं तिहुँकाल कुसल निज लेखी॥
अब प्रभु परम अनुग्रह तोरे। सहित कोटि कुल मंगल मोरे॥

दोहा

समुझि मोरि करतूति कुल, प्रभु महिमा जिय जोइ।
जो न भजइ रघु-बीर-पद, जग विधिवंचित सोइ॥

चित्रकूट में श्रीरामचन्द्र और भरत

भरत जी गंगा पार कर आगे चले। साथ में निषाद भी हो गया। प्रयाग में भरद्वाज जी के आश्रम में ये सब लोग अगले दिन टिक रहे। वहाँ यह सुन कर कि, श्रीरामचन्द्र जी चित्रकूट गये हैं, ये लोग भी उधर ही चले। ये लोग चित्रकूट के पास आग ये हैं। इसके बाद का वृत्तान्त इस अवतरण में दिया जाता है।

चौपाई

चले भरत जहँ सिय रघुराई। साथ निषादनाथ - लघुभाई॥

दोहा

लगे होन मंगल सगुन, सुनि गुनि कहत निषादु।
मिटिहि सोच होइहि हरषु, पुनि परिनाम बिषादु॥

चौपाई

सेवक-वचन सत्य सब जाने। आश्रम निकट जाइ नियराने॥
करत प्रनाम चले दोउ भाई। कहत प्रीति सारद सकुचाई॥
हरषहिँ निरखि रामपद अंका। मानहुँ पारसु पायेउ रंका॥
रजसिरधरिहिय नयनन्हिलावहिँ। रघुवर मिलन सरिस सुख पावहिँ॥
वेदी पर मुनि-साधु-समाजू। सीयसहित राजत रघुराजू॥
सानुज सखा समेत मगन मन। बिसरे हरष सोक-सुख-दुख-गन॥
पाहि नाथ कहि पाहि गोसाइँ। भूतल परे लकुट की नाइँ॥
वचन सप्रेम लषन पहिचाने। करत प्रनाम भरत जिय जाने॥

कहत सप्रेम नाइ महि माथा। भरत प्रनाम करत रघुनाथा॥
उठे राम सुनि प्रेम अधीरा। कहुँ पट कहुँ निषंग धनु तीरा॥

दोहा

बरबस लिये उठाइ उर, लाये कृपानिधान।
भरत राम की मिलनि लखि, बिसरे सबहिं अपान॥
मिलि सप्रेम रिपुसूदनहिं, केवट भेंटेउ राम।
भूरि भाय भेंटे भरत, लछिमन करत प्रनाम॥

चौपाई

भेंटेउ लषन ललकि लघुभाई। बहुरि निषाद लीन्ह उर लाई॥
पुनि मुनिगन दुहुँ भाइन्ह बन्दे। अभिमत आसिष पाइ अनन्दे॥
सानुज भरत उमँगि अनुरागा। धरि सिर सिय-पद-पदुम-परागा॥
पुनि पुनि करत प्रनाम उठाये। सिर करकमल परसि बैठाये॥
आरत लोग राम सब जाना। करुनाकर सुजान भगवाना॥
सानुज मिलि पल महँ सबकाहू। कीन्ह दूरि दुख-दारुन दाहू॥
प्रथम राम भेंटी कैकेयी। सरल सुभाय भगति मति भेयी॥
पग परि कीन्ह प्रबोध घनेरी। कालकरम विधि सिर धरिखोरी॥

दोहा

भेंटी रघुबर मातु सब, करि प्रबोध परितोषु।
अंब ईस आधीन जग, काहु न देइय दोषु॥
महिसुर मंत्री मातु गुरु, गने लोग लिये साथ।
पावन आस्रम गवनु किय, भरत लषन रघुनाथ॥

चौपाई

मिली सकल सासुन्ह सिय जाई। तेहि अवसर करुना महि छाई॥
नृपकर सुर-पुर-गवन सुनावा। सुनि रघुनाथ दुसह दुख पावा॥

मुनिवर बहुरि राम समुझाए। सहित समाज सुरसरित नहाये॥
करि पितुक्रिया वेद जस बरनी। भे पुनीत पातक-तम-तरनी॥

दोहा

गुरु-पद-कमल प्रनाम करि, बैठे आयसु पाइ।
विप्र महाजन सचिव सब, जुरे सभासद आइ॥

चौपाई

भरत मुनिहि मन भीतर भाये। सहित समाज राम पहिं आये॥
प्रभु प्रनाम करि दीन्ह सुआसन। बैठे सब मुनि सुनि अनुसासन॥
बोले मुनिबर बचन विचारी। देस काल अवसर अनुहारी॥
सुनहु राम सरबग्य सुजाना। धरम-नीति-गुन-ग्यान-निधाना॥
आरत कहहिं विचारि न काऊ। सूझ जुआरिहि आपुन दाऊ॥
सुनि मुनि बचन कहत रघुराऊ। नाथ तुम्हारेहि हाथ उपाऊ॥
प्रथम जो आयसु मो कहँ होई। माथे मानि करउँ सिख सोई॥
पुनि जेहि कहँ जस कहब गोसाईं। सो सब भाँति घटिहि सेवकाई॥
कह मुनि राम सत्य तुम भाषा। भरत-सनेह-विचारु न राषा॥

दोहा

भरत-विनय सादर सुनिअ, करिअ विचारु बहोरि।
करब साधुमत लोकमत, नृपनय निगम निचोरि॥

चौपाई

सुनि मुनिबचन रामरुख पाई। गुरु साहब अनुकूल अघाई॥
पुलकि सरीर भरत भये ठाढ़े। नीरजनयन नेहजल बाढ़े॥
कहब मोर मुनिनाथ निबाहा। एहि तें अधिक कहउँ मैं काहा॥
मैं जानउँ निजनाथ सुभाऊ। अपराधिहु पर कोह न काऊ॥
मो पर कृपा सनेह बिसेषी। खेलत खुनस न कबहूँ देखी॥

सिसुपन तें परिहरेउ न संगू। कबहुँ न कीन्ह मोर मन भंगू॥
मैं प्रभु कृपारीति जिय जोही। हारेहु खेल जितावहिं मोही॥

दोहा

महूँ सनेह-सकोच-बस, सन्मुख कहे न बैन।
दरसन तृपित न आजु लगि, प्रेम पियासे नैन॥

चौपाई

बिधि न सकेउ सहि मोर दुलारा। नीच बीच जननी मिस पारा॥
यहहु कहत मोहिं आजु न सोभा। अपनी समुझि साधु सुचि कोभा॥
मातु मंद मैं साधु सुचाली। उर अस आनत कोटि कुचाली॥
फरइ कि कोदव बालि सुसाली। मुकता प्रसव कि संबुक ताली॥
सपनेहु दोष कलेस न काहू। मोर अभाग उदधि अवगाहू॥
बिनु समझे निज-अघ-परि-पाकू। जारिउँ जाय जननि कहि काकू॥
हृदय हेरि हारेउँ सब ओरा। एकहि भाँति भलेहि भल मोरा॥
गुरु गोसाइँ साहिब सियरामू। लागत मोहि नीक परिनामू॥

दोहा

साधु-सभा-प्रभु गुरु-निकट, कहउँ सुथल सतिभाउ।
प्रेम प्रपंच कि झूठ फुर, जानहिं मुनि रघुराउ॥

चौपाई

भूपतिमरन प्रेमपनु राखी। जननी कुमति जगत सब साखी॥
देखि न जाहिं बिकल महतारी। जरहिं दुसह ज्वर पुर-नर-नारी॥
मही सकल अनरथ कर मूला। सो सुनि समुझि सहेउँ सब सूला॥
सुनि बनगवनु कीन्ह रघुनाथा। करि मुनिबेष लषन-सिय-साथा॥
बिनु पनहिन्ह पयादेहि पाये। संकरु साखि रहेउँ एहि घाये॥
बहुरि निहारि निषादसनेहू। कुलिस कठिन उर भयउ न बेहू॥

अब सब आँखिन देखेउँ आई । जियत जीव जड़ सबै सहाई ॥
जिन्हहिं निरखिमगसापिनि बीछी । तजहिं बिषम बिष तामसतीछी ॥

दोहा

तेइ रघुनन्दन लषन सिय, अनहित लागे जाहि ।
तासु तनय तजि दुसह दुख, दैव सहावइ काहि ॥

चौपाई

सुनि अति बिकल भरत-बर-बानी । आरति-प्रीति-बिनय-नय-सानी ॥
कहि अनेक बिधि कथा पुरानी । भरत प्रबोधु कीन्ह मुनि ग्यानी ॥
बोले उचित बचन रघुनन्दू । दिन-कर-कुल-कैरव-बन-चन्दू ॥
तात जाय जनि करहु गलानी । ईस अधीन जीव गति जानी ॥
तीन काल त्रिभुअन मत मोरे । पुन्यसलोक तात तर तोरे ॥
उर आनत तुम्ह पर कुटिलाई । जाइ लोकु-परलोकु नसाई ॥
दोसु देहि जननिहि जड़ तेई । जिन्ह गुरु-साधु-सभा नहिँ सेई ॥

दोहा

मिटिहहिँ पाप प्रपंच सब, अखिल अमंगल भार ।
लोक सुजस परलोक सुख, सुमिरत नाम तुम्हार ॥

चौपाई

कहउँ सुभाउ सत्य सिव साखी । भरत भूमि रह राउरि राखी ॥
तात कुतर्क करहु जनि जाये । बैर प्रेम नहिँ दुरइ दुराये ॥
मुनिगन निकट बिहँग मृगजाहीँ । बाधक बधिक बिलोकि पराहीँ ॥
हित अनहित पसु पच्छिउ जाना । मानुषतनु गुन-ग्यान-निधाना ॥
तात तुम्हहिँ मैं जानउँ नीके । करउँ काह असमंजस जी के ॥
राखेउ राय सत्य मोहि त्यागी । तनु परिहरेउ प्रेमपन लागी ॥

तासु वचन मेटत मन सोचू । तेहि तें अधिक तुम्हार सँकोचू ॥
ता पर गुरु मोहिं आयसु दीन्हा । अवसि जोकहहु चहउँ सोइकीन्हा॥

दोहा

मन प्रसन्न करि सकुच तजि, कहहु करउँ सो आजु ।
सत्य - सन्धु - रघुवर-वचन, सुनि भा सुखी समाजु ॥
कीन्ह अनुग्रह अमित अति, सव विधि सीतानाथ ।
करि प्रनाम वोले भरत, जोरि-जलज-जुग-हाथ ॥

चौपाई

कहउँ कहावउँ का अव स्वामी । कृपा-अम्वु-निधि अन्तरजामी ॥
गुरु प्रसन्न साहिव अनुकूला । मिटी मलिन मन कलपित सूला ॥
अपडर डरेउँ न सोच समूले । रविहि न दोष देव दिसि भूले ॥
मोर अभाग मातु कुटिलाई । विधिगति विषम काल कठिनाई ॥
पाउँ रोपि सव मिलि मोहि घाला । प्रनतपाल पन आपन पाला ॥
यह नइ रीति न राउरि होई । लोकहु वेद विदित नहिं गोई ॥
जग अनभल भल एक गोसाईं । कहिय होय भल कासु भलाई ॥
देव देव - तरु - सरिस सुभाऊ । सनमुख विमुख न काहुहि काऊ ॥

दोहा

जाइ निकट पहिचान तरु, छाँह समनि सव सोच ।
माँगत अभिमत पाव जग, राउ रंक भल पोँच ।

चौपाई

लखिसव विधि-गुरु-स्वामि-सनेहू । मिटेउ छोभ नहिं मन संदेहू ॥
अव करुनाकर कीजिय सोई । जनहित प्रभुचित छोभ न होई ॥
जो सेवक साहिवहिं सँकोची । निजहित चहइ तासु मति पोची ॥
सेवक-हित साहिव-सेवकाई । करइ सकल सुख लोभ विहाई ॥

स्वारथ नाथ फिरे सब ही का। किये रजाइ कोटि विधि नीका॥
यह स्वारथ - परमारथ - सारू। सकल सुकृत फल सुगति सिंगारू
देव एक बिनती सुनि मेरी। उचित होइ तस करब बहोरी॥
तिलक समाजु साजि सबु आना। करिय सुफल प्रभु जौं मन माना॥

दोहा

सानुज पठइय मोहिं बन, कीजिय सबहिं सनाथ।
नतरु फेरिअहि बन्धु दोउ, नाथ चलौं मैं साथ॥

चौपाई

नतरु जाहिं बन तीनिउ भाई। बहुरिय सीय सहित रघुराई॥
जेहि बिधि प्रभु प्रसन्न मन होई। करुना-सागर कीजिय सोई॥
देव दीन्ह सब मोहि अभारू। मोरे नीति न धरम बिचारू॥
कहउँ बचन सब स्वारथहेतू। रहत न आरत के चित चेतू॥
उतर देइ सुनि स्वामि-रजाई। सो सेवकु लखि लाज लजाई॥
अस मैं अवगुन-उदधि-अगाधू। स्वामि सनेह सराहत साधू॥
अब कृपालु मोहि सो मत भावा। सकुच स्वामि मन जाइ न पावा॥
प्रभु-पद-सपथ कहउँ सतिभाऊ। जग-मंगल-हित एक उपाऊ॥

दोहा

प्रभु प्रसन्न मन सकुचि तजि, जो जेहि आयसु देब।
सो सिर धरि धरि करिहिं सबु, मिटहि अनट अवरेब॥
प्रेममगन तेहि समय सब, सुनि आवत मिथिलेसु।
सहित सभा संभ्रम उठेउ, रबि-कुल-कमल-दिनेसु॥

चौपाई

भाइन्ह सहित राम मिलि राजहिं। चले लेवाइ समेत समाजहिं॥
तब सब लोग नहाइ नहाई। राम जनक मुनि आयसु पाई॥

देखि देखि तरुवर अनुरागे। जहँ तहँ पुरजन उतरन लागे ॥
एहि बिधि बासर बीते चारी। रामु निरखि नरनारि सुखारी ॥
रामसमाज प्रात जुग जागे। न्हाइ न्हाइ सुर पूजन लागे ॥
गे नहाइ गुरु पहँ रघुराई। बंदि चरन बोले रुख पाई ॥
नाथ भरत पुरजन महतारी। सोकविकल बनवास दुखारी ॥
सहित समाज राउ मिथिलेसू। बहुत दिवस भे सहत कलेसू ॥
उचित होइ सो कीजिय नाथा। हित सब ही कर रउरे हाथा ॥
अस कहि अति सकुचे रघुराऊ। मुनि पुलके लखि सील सुभाऊ ॥
तुम्ह बिनु राम सकल सुख साजा। नरक सरिस दुहुँ राजसमाजा ॥

दोहा

प्रान प्रान के जीव के, जिव सुख के सुख राम।
तुम्ह तजि तात सुहात गृह, जिन्हहिं तिन्हहिं बिधिबाम ॥
ग्यान निधान सुजान सुचि, धरम-धीर नर-पाल।
तुम्ह बिनु असमंजस-समन, को समरथ एहि काल ॥

चौपाई

गये जनक रघुनाथ समीपा। सनमाने सब रबि-कुल-दीपा ॥
समय समाज धरम अविरोधा। बोले तब रघु-बंस-पुरोधा ॥
जनक भरत संवाद सुनाई। भरत कहाउति कही सुहाई ॥
तात राम जस आयसु देहू। सो सब करइ मोर मत एहू ॥
सुनि रघुनाथ जोर जुगपानी। बोले सत्य सरल मृदु बानी ॥
विद्यमान आपुन मिथिलेसू। मोरि कहब सब भाँति भदेसू ॥
राउर राय रजायसु होई। राउरि सपथ सही सिर सोई ॥

दोहा

रामसपथ सुनि मुनि जनक, सकुचे सभा समेत।
सकल बिलोकत भरतमुख, बनइ न ऊतरु देत ॥

चौपाई

सभा सकुचवस भरत निहारी। रामवन्धु धरि धीरज भारी॥
करि प्रनाम सव कहँ करजोरे। राम राउ गुरु साधु निहोरे॥
छमब आजु अति अनुचित मोरा। कहउँ वचन मृदु वचन कठोरा॥
प्रभु पितु मातु सुहृद गुरु स्वामी। पूज्य परम हित अंतरजामी॥
सरल सुसाहिव सील निधानू। प्रनतपाल सर्वग्य सुजानू॥
समरथ सरनागत हितकारी। गुनगाहक अवगुन-अघ-हारी॥
स्वामि गोसाइँहि सरिस गोसाईं। मोहिं समान मैं साइँ दुहाईं॥
प्रभु-पितु-वचन मोहवस पेली। आयेउँ इहाँ समाज सकेली॥
जग भल पोच ऊँच अरु नीचू। अमिय अमरपद माहुर मीचू।
रामरजाय मेट मन माहीं। देखा सुना कतहुँ कोउ नाहीं॥
सो मैं सव विधि कीन्हि ढिठाई। प्रभु मानी सनेह सेवकाई॥

दोहा

कृपा भलाई आपनी, नाथ कीन्ह भल मोर।
दूषन भे भूषनसरिस, सुजस चारु चहुँ ओर॥

चौपाई

राउरि रीति सुवानि वड़ाई। जगत विदित निगमागम गाई॥
क्रूर कुटिल खल कुमति कलंकी। नीच निसील निरीस निसंकी॥
तेउ सुनि सरन सामुहे आये। सकृत प्रनाम किये अपनाये॥
देखि दोष कवहु न उर आने। सुनि गुन साधुसमाज वखाने॥
को साहिव सेवकहि निवाजी। आप समान साज सव साजी॥
निज करतूति न समुझिय सपने। सेवक सकुच सोच उर अपने॥
सो गोसाइँ नहिँ दूसर कोपी। भुजा उठाइ कहउँ पन रोपी॥
पसु नाचत सुक पाठ प्रवीना। गुनगति नट पाठक आधीना॥

दोहा

योँ सुधारि सनमानि जन, किये साधु सिरमोर।
को कृपालु बिनु पालिहै, बिरिदावलि बरजोर॥

चौपाई

सोक सनेह कि बाल सुभाएँ। आयेउँ लाइ रजायसु बाएँ॥
तबहुँ कृपालु हेरि निज ओरा। सबहिं भाँति भल मानेउ मोरा॥
देखेउँ पाय सुमंगल-मूला। जानेउँ स्वामि सहज अनुकूला॥
बड़े समाज बिलोकेउँ भागू। बड़ी चूकि साहिब अनुरागू॥
कृपा अनुग्रह अंग अघाई। कीन्हि कृपानिधि सब अधिकाई॥
राखा मोर दुलार गोसाईं। अपने सील सुभाय भलाईं॥
नाथ निपट मैं कीन्हि ढिठाई। स्वामि समाज सकोच बिहाई॥
अबिनय बिनय जथारुचि बानी। छमहिं देव अति आरत जानी॥

दोहा

सुहृद सुजान सुसाहिबहि, बहुत कहब बड़ि खोरि।
आयसु देइय देव अब, सबइ सुधारिय मोरि॥

चौपाई

प्रभु - पद - पदुम - पराग दोहाई। सत्य सुकृति सुख सीवँ सुहाई॥
सो करि कहउँ हिये अपने की। रुचि जागत सोवत सपने की॥
सहज सनेह स्वामि सेवकाई। स्वारथ छल फल चारि बिहाई॥
अग्यासम नहिं साहिब सेवा। सो प्रसाद जन पावइ देवा॥
अस कहि प्रेमबिबस भये भारी। पुलक सरीर बिलोचन बारी॥
प्रभु-पद-कमल गहे अकुलाई। समउ सनेह न सो कहि जाई॥
कृपासिंधु सनमानि सुबानी। बैठाये समीप गहि पानी॥

देस काल लखि समय समाजू। नीति-प्रीति-पालक रघुराजू॥
बोले बचन बानि सरबस से। हित परिनाम सुनत ससिरस से॥
तात भरत तुम्ह धरमधुरीना। लोक बेद बिद प्रेमप्रवीना॥

दोहा

करम बचन मानस बिमल, तुम्ह समान तुम्ह तात।
गुरु-समाज लघु-बंधु-गुन, कुसमय किमि कहि जात॥

चौपाई

जानहु तात तरनि-कुल-रीती। सत्यसिंधु पितु कीरति प्रीती॥
समउ समाज लाज गुरुजन की। उदासीन हित अनहित मन की॥
तुम्हहिं बिदित सब ही कर करमू। आपन मोरि परम हित धरमू॥
मोहि सब भाँति भरोस तुम्हारा। तदपि कहउँ अवसर अनुसारा॥
तात तात बिनु बात हमारी। केवल गुरु-कुल-कृपा सँभारी॥
न तरु प्रजा पुरजन परिवारू। हमहिं सहित सब होत खुआरू॥
जौं बिनु अवसर अथव दिनेसू। जग केहि कहहु न होइ कलेसू॥
तस उतपात तात बिधि कीन्हा। मुनि मिथिलेस राखि सबु लीन्हा॥

दोहा

राजकाज सब लाज पति, धरम धरनि धन धाम।
गुरुप्रभाउ पालिहि सबहिँ, भल होइहि परिनाम॥

चौपाई

सहित समाज तुम्हार हमारा। घर बन गुरु-प्रसाद रखवारा॥
मातु-पिता-गुरु-स्वामि-निदेसू। सकल धरम धरनीधरु सेसू॥
सो तुम्ह करहु करावहु मोहू। तात तरनि-कुल-पालक होहू॥
साधक एक सकल सिधि देनी। कीरति सुगति भूतिमय बेनी॥

सो विचार सहि संकट भारी। करहु प्रजा परिवार सुखारी॥
बाढ़ी विपति सबही मोहि भाई। तुम्हहिँ अवधिभरि बड़ि कठिनाई॥
जानि तुम्हहिँ मृदु कहहुँ कठोरा। कुसमय तात न अनुचित मोरा॥
होहिँ कुठाय सुबंधु सहाये। ओड़ियहि हाथ असनि के घाये॥

दोहा

सेवक कर पद नयन से, मुख सो साहिब होइ॥
तुलसी प्रीति की रीति सुनि, सुकवि सराहहिँ सोइ॥

चौपाई

सभा सकल सुनि रघुवर-बानी। प्रेम-पयोधि-अमिय जनु सानी॥
सिथिल समाज सनेह समाधी। देखि दसा चुप सारद साधी॥
भरतहिँ भयऊ परम सँतोषू। सनमुख स्वामि बिमुख दुख दोषू॥
कीन्ह सप्रेम प्रनाम बहोरी। बोले पानि-पंकरुह जोरी॥
नाथ भयउ सुख साथ गये को। लहेउँ लाहु जग जनम भये को॥
अब कृपालु जस आयसु होई। करउँ सीस धरि सादर सोई॥
मोहि लगि सबहिँ सहेउ सन्तापू। बहुत भाँति दुख पावा आपू॥
अब गोसाईं मोहिँ देउ रजाई। सेउँ अवध अवधि भरि जाई॥

दोहा

जेहि उपाय पुनि पाय जन, देखइ दीनदयाल।
सो सिख देइय अवधि लगि, कोसलपाल कृपाल॥

चौपाई

पुरजन परिजन प्रजा गोसाईं। सब सुचि सरस सनेह सगाई॥
राउर बदि भल भव-दुख-दाहू। प्रभु बिनु बादि परम-पद-लाहू॥
स्वामि सुजान जानि सब ही की। रुचि लालसा रहनि जनजी की॥
प्रनतपालु पालहिँ सब काहू। देव दुहूँ दिसि ओर निबाहू॥

असमोहि सब विधि भूरि भरोसो। किये बिचारु न सोच खरो सो॥
आरति मोर नाथ कर छोहू। दुहुँ मिलि कीन्ह ढीठ हठि मोहू॥
यह बड़ दोष दूरि कर स्वामी। तजि सकोच सिखइय अनुगामी॥
भरतबिनय सुनि सबहि प्रसंसी। छीर-नीर-बिबरन-गति हंसी॥

दोहा

दीनबन्धु सुनि बन्धु के, बचन दीन छलहीन।
देस-काल-अबसरु-सरिस, बोले रामु प्रवीन॥

चौपाई

तात तुम्हारि मोरि परिजन की। चिन्ता गुरुहिँ नृपहिँ घर बनकी॥
माथे पर गुरु मुनि मिथिलेसू। हमहिँ तुम्हहिँ सपनेहुँ न कलेसू॥
मोर तुम्हार परम पुरुषारथ। स्वारथ सुजस धरम परमारथ॥
पितुआयसु पालिय दुहुँ भाई। लोक बेद भल भूप भलाई॥
गुरु-पितु-मातु-स्वामि-सिख पाले। चलेहु कुमगु-पग परहिँ न खाले॥
असबिचारि सब सोच बिहाई। पालहु अबध अवधि भरि जाई॥
देस कोस पुरजन परिबारू। गुरुपद-रजहिँ लाग छरुभारू॥
तुम्ह मुनि-मातु-सचिब-सिखमानी। पालेहु पुहुमि प्रजा रजधानी॥

दोहा

मुखिया मुख सो चाहिये, खान पान कहँ एक।
पालइ पोषइ सकल अँग, तुलसी सहित बिबेक॥

चौपाई

राज-धरम-सरबसु इतनोई। जिमि मन माँह मनोरथ गोई॥
बन्धु प्रबोध कीन्ह बहु भाँती। बिनु अधार मन तोष न साँती॥

प्रभु करि कृपा पांवरी दीन्ही। सादर भरत सीस धरि लीन्ही॥
भरत मुदित अवलम्ब लहे तें। अस सुख जस सिय राम रहे तें॥

दोहा

माँगेउ बिदा प्रनामु करि, राम लिए उर लाइ।
लोग उचाटे अमरपति, कुटिल कुअवसर पाइ॥

श्रीरामचन्द्र जी और लक्ष्मण जी का संवाद

[भरत जी अपने साथियों के साथ अयोध्या को लौट गये। श्रीरामचन्द्र जी भी चित्रकूट में रहना उचित न समझ वहाँ से आगे बढ़े। अत्रि, शरभङ्ग, सुतीक्ष्ण, अगस्त्य आदि ऋषियों से मिलते हुए, वे पंचवटी पहुँचे। वहाँ एक दिन लक्ष्मण जी ने श्रीरामचन्द्र जी से पूछा कि, उनके चरणों में प्रीति क्यों कर हो सकती है? इसके उत्तर में श्रीरामचन्द्र जी ने भक्तियोग का वर्णन इस प्रकार किया है।]

चौपाई

एक बार प्रभु सुख आसीना। लछिमन बचन कहे छलहीना॥
सुर नर मुनि सचराचर साईं। मैं पूछउँ निज प्रभु की नाईं॥

दोहा

ईस्वर जीवहि भेद प्रभु, कहहु सकल समुझाइ।
जातें होइ चरन रति, सोक मोह भ्रम जाइ॥

चौपाई

थोरेहि महँ सब कहउँ बुझाई। सुनहु तात मति मन चित लाई॥
मैं अरु मोर तोर तैं माया। जेहि बस कीन्हे जीवनिकाया॥
गो गोचर जहँ लग मन जाई। सो सब माया जानेहु भाई॥
तेहि कर भेद सुनहु तुम्ह सोऊ। बिद्या अपर अबिद्या दोऊ॥

एक दुष्ट अतिसय दुखरूपा। जा बस जीव परा भवकूपा॥
एक रचइ जग गुनबस जाके। प्रभुप्रेरित नहिं निजबल ताके॥
ग्यान मान जहँ एकउ नाहीं। देखत ब्रह्मरूप सब माहीं॥
कहिय तात सो परम बिरागी। तृनसम सिद्धि तीनि गुन त्यागी॥

दोहा

माया ईस न आपु कहँ, जान कहिय सो जीव।
बन्ध मोच्छप्रद *सरब पर, माया प्रेरक सीव॥

चौपाई

धर्म तें बिरति जोग तें ग्याना। ग्यान मोच्छ-प्रद बेद बखाना॥
जा तें बेगि द्रवउँ मैं भाई। सो मम भगति भगत-सुख-दाई॥
सो सुतन्त्र अवलम्ब न आना। तेहि आधीन ग्यान बिग्याना॥
भगति तात अनुपम सुखमूला। मिलइ जो संत होहिँ अनुकूला॥
भगति के साधन कहउँ बखानी। सुगम पंथ मोहि पावहिँ प्रानी॥
प्रथमहिं बिप्रचरन अति प्रीती। निज निज धरम निरत स्रुतिरीती॥
यहि कर फल पुनि बिषयबिरागा। तब मम धरम उपज अनुरागा॥
स्रवनादिक नव भगति दृढाहीं। मम लीलारति अति मन माहीं॥
संत-चरन-पंकज अति प्रेमा। मन क्रम बचन भजन दृढ़ नेमा॥
गुरु पितु मातु बंधु पति देवा। सब मोहिं कहँ जानइ दृढ़ सेवा॥
मम गुन गावत पुलक सरीरा। गदगद गिरा नयन बह नीरा॥
काम आदि मद दंभ न जाके। तात निरन्तर बस मैं ताके॥

दोहा

बचन करम मन मोरि गति, भजन करहिं निःकाम।
तिन्हके हृदय कमल महुँ, करउँ सदा बिस्राम॥

---

* पाठान्तर—सर्वपर।

चौपाई

भगतिजोग सुनि अति सुख पावा । लछिमन प्रभुचरनन्हि सिरु नावा ॥
नाथ सुने गत मम सन्देहा । भयेउ ग्यान उपजेउ नव नेहा ॥
अनुजबचन सुनि प्रभु मन भाये । हरषि राम निज हृदय लगाये ॥
एहि बिधि गये कछुक दिन बीती । कहत बिराग ग्यान गुन नीती ॥

सूर्पनखा और लक्ष्मण

[यह घटना उपरोक्त कथोपकथन के बाद ही की है। इसमें रावण की बहिन सूर्पनखा के नाक कान काटे जाने का वर्णन है।]

चौपाई

सूपनखा रावन कै बहिनी। दुष्ट हृदय दारुन जसि अहिनी॥
पंचवटी सो गइ एक बारा। देखि बिकल भइ जुगल कुमारा॥
रुचिर रूप धरि प्रभु पहिं जाई। बोली बचन मधुर मुसुकाई॥
तुम्ह सम पुरुष न मो सम नारी। यह सजोग बिधि रचा बिचारी॥
मम अनुरूप पुरुष जग माहीं। देखिउँ खोजि लोक तिहुँ नाहीं॥
तातें अब लगि रहिउँ कुमारी। मन माना कछु तुम्हहि निहारी॥
सीतहि चितइ कही प्रभु बाता। अहइ कुमार मोर लघु भ्राता॥
गई लछिमन रिपुभगिनी जानी। प्रभु बिलोकि बोले मृदुबानी॥
सुन्दरि सुन मैं उन कर दासा। पराधीन नहिं तोर सुपासा॥
प्रभु समरथ कोसल-पुर-राजा। जो कछु करहिं उन्हहि सब छाजा॥

दोहा

केहरि सम नहिं करिवर, लवा कि बाज समान।
प्रभुसेवक इमि जानहु, मानहु वचन प्रमान॥

चौपाई

सेवक सुख चह मान भिखारी। व्यसनी धन सुभगति बिभिचारी॥
लोभी जसु चह चार गुमानी। नभ दुहि दूध चहत ए प्रानी॥
पुनि फिरि राम निकट सो आई। प्रभु लछिमन पहिं बहुरि पठाई॥
लछिमन कहा तोहि सो बरई। जो तृन तोरि लाज परिहरई॥
तब खिसिआन राम पहिं गई। रूप भयंकर प्रगटत भई॥
बिथुरे केस रदन बिकराला। भृकुटी कुटिल करन लगि गाला॥
सीतहि सभय देखि रघुराई। कहा अनुज सन सैन बुझाई॥
अनुज राममन की गति जानी। उठे रिसाय तब सुनहु भवानी॥

दोहा

लछिमन अति लाघवहिँ सोँ, नाक कान बिनु कीन्हि।
ताके कर रावन कहँ, मनहुँ चुनौती* दीन्ह॥

सवरी के आश्रम में श्रीरामचन्द्र

[सूर्पनखा, नाक कान कट जाने पर बड़ी क्रुद्ध हुई। वह खर दूषन के पास गयी। खर और दूषन श्रीरामचन्द्र से अपनी बहिन के अपमान का बदला लेने, सेना समेत गये और लड़ाई में मारे गये। इसके बाद वह रावण के पास गयी। रावण ने मारीच को मृग का भेष धरा कर, श्रीरामचन्द्र जी के पास भेजा। वे उसका शिकार करने के लिये उसके पीछे गये। लक्ष्मण जी भी कारणवश उनके पीछे गये। इस बीच में रावण संन्यासी का कपट वेष धर कर, सीता को चुरा ले गया। लौट कर श्रीरामचन्द्रजी और लक्ष्मण जी ने सीता जी को स्थान पर न पाया। तब वे दोनों सीता जी को ढूँढ़ते ढूँढ़ते आगे चले। चलते चलते तब वे सवरी के आश्रम में पहुँचे। इसके आगे का हाल नीचे दिया जाता है।]

चौपाई

सवरी देखि राम गृह आये। मुनि के वचन समुझि जिय भाये॥
सरसिज-लोचन बाहु बिसाला। जटा मुकुट सिर उर बनमाला॥
स्याम गौर सुन्दर दोउ भाई। सवरी परी चरन लपटाई॥
प्रेममगन मुख वचन न आवा। पुनि पुनि पदसरोज सिरु नावा॥
सादर जल लेइ चरन पखारे। पुनि सुन्दर आसन बैठारे॥

दोहा

कंद मूल फल सुरस अति, दिये राम कहुँ आनि।
प्रेमसहित प्रभु खाये, बारंबार बखानि॥

चौपाई

पानि जोरि आगे भइ ठाढ़ी । प्रभुहि बिलोकि प्रीति उर बाढ़ी ॥
केहि बिधि अस्तुति करउँ तुम्हारी । अधमजाति मैं जड़मति भारी ॥
अधम तें अधम अधम अति नारी । तिन महँ मैं मतिमन्द अघारी ॥
कह रघुपति सुनु भामिनि बाता । मानउँ एक भगति कर नाता ॥
जाति पाँति कुल धरम बड़ाई । धन बल परिजन गुन चतुराई ॥
भगतिहीन नर सोहइ कैसा । बिनु जल बारिद देखिय जैसा ॥
नवधा भगति कहउँ तोहि पाहीं । सावधान सुनु धरु मन माहीं ॥
प्रथम भगति संतन्ह कर संगा । दूसरि रति मम कथा प्रसंगा ॥

दोहा

गुरु - पद - पंकज सेवा, तीसरि भगति अमान ।
चौथि भगति मम गुनगन, करइ कपट तजि गान ॥

चौपाई

मन्त्र जाप मम दृढ़ बिस्वासा । पंचम भजन सो बेद प्रकासा ॥
छठ दम सील बिरति बहु कर्मा । निरति निरंतर सज्जन धर्मा ॥
सातव सम मोहि मय जग देखा । मो ते संत अधिक कर लेखा ॥
आठव जथालाभ संतोषा । सपनेहु नहिँ देखइ परदोषा ॥
नवम सरल सब सन छलहीना । मम भरोस जिय हरष न दीना ॥
नव महुँ एकउ जिन्हके होई । नारि पुरुष सचराचर कोई ॥
सोइ अतिसय प्रिय भामिनि मोरे । सकल प्रकार भगति दृढ़ तोरे ॥
जोगि-बृन्द-दुर्लभ-गति जोई । तो कहुँ आजु सुलभ भइ सोई ॥
मम दरसन फल परम अनूपा । जीव पाव निज सहज सरूपा ॥

दोहा

सब प्रकार तव भाग बड़, मम चरनन्हि अनुरागु ।
तव महिमा जेहि उर बसिहि, तासु परम जगु भागु ॥

चौपाई

बचन सुनत सबरी हरषाई। पुनि बोले प्रभु गिरा सुहाई॥
जनकसुता कै सुधि जो भामिनी। जानहि कहु सो करि-बर-गामिनी॥
पंपासरहि जाहु रघुराई। मुनिवर बिपुल रहे जहँ छाई॥
रिष मतंग महिमा गुन भारी। जीव चराचर रहत सुखारी॥
बैर न कर काहू सन कोऊ। जा सन बैर प्रीति कर सोऊ॥
सिखर सुहावन कानन फूले। खग मृग जीव जंतु अनुकूले॥
करहु सफल श्रम सब कर जाई। तहँ होइहि सुग्रीव मिताई॥
सो सब कहहि देव रघुबीरा। जानतहू पूँछहु मतिधीरा॥
बार बार प्रभुपद सिरु नाई। प्रेमसहित सब कथा सुनाई॥

छन्द

कहि कथा सकल बिलोकि हरिमुख हृदय पदपंकज धरे।
तजि जोगपावक देह हरिपद लीन भइ जहँ नहि फिरे॥
नर बिबिध कर्म अधर्म बहु मत सोकप्रद सब त्यागहू।
बिस्वास करि कह दास तुलसी रामपद अनुरागहू॥

दोहा

जातिहीन अघ जनम महि, मुकुति कीन्हि असि नारि।
महा-मन्द-मन सुख चहसि, ऐसे प्रभहि बिसारि॥

प्रवर्षन-पर्वत पर श्रीरामचन्द्र जी का वास

[जैसा कि पिछली कथा के अन्तिम भाग में कहा गया है, श्रीरामचन्द्र जी आगे बढ़े और उन्होंने सुग्रीव से मित्रता की। सुग्रीव के अनुरोध से उन्होंने बालि का वध किया और सुग्रीव को राज्य दिलाया। वर्षाऋतु निकट आयी जान कर, श्रीरामचन्द्र जी लक्ष्मण जी को लेकर प्रवर्षन नामक पर्वत पर चले गये। वहाँ वे वर्षा और शरद्‌ऋतु में रहे थे। अतः उन्होंने वहाँ की इन दोनों ऋतुओं का वर्णन इस प्रकार किया है।]

दोहा

प्रथमहिँ देवन्ह गिरि गुहा, राखी रुचिर बनाइ।
राम कृपानिधि कछुक दिन, बास करहिंगे आइ॥

चौपाई

देखि मनोहर सैल अनूपा। रहे तहँ अनुज सहित सुरभूपा॥
मंगलरूप भयउ बन तब तेँ। कीन्ह निवास रमापति जब तेँ॥
मधुकर-खग-मृग-तनु धरि देवा। करहि सिद्ध मुनि प्रभु कै सेवा॥
फटिक-सिला अतिसुभ्र सुहाई। सुख आसीन तहाँ दोउ भाई॥
कहत अनुज सन कथा अनेका। भगति बिरति नृपनीति बिबेका॥
बरषाकाल मेघ नभ छाये। गरजत लागत परम सुहाये॥

दोहा

लछिमन देखहु मोरगन, नाचत बारिद पेखि।
गृही बिरतिरत हरष जस, बिष्णुभगत कहुँ देखि॥

चौपाई

घन घमंड नभ गरजत घोरा। प्रियाहीन डरपत मन मोरा॥
दामिनि दमकि रही घन माहीं। खल कै प्रीति जथा थिर नाहीं॥
वरषहिं जलद भूमि नियराये। जथा नवहिं बुध विद्या पाये॥
बुन्द अघात सहहिं गिरि कैसे। खल के वचन संत सह जैसे॥
छुद्र नदी भरि चली उतराई। जस थोरेहु धन खल बौराई॥
भूमि परत भा ढावर पानी। जिमि जीवहि माया लपटानी॥
सिमिटि सिमिटि जल भरहि तलावा। जिमि सद्गुन सज्जन प इआवा॥
सरिताजल जलनिधि महुँ जाई। होइ अचल जिमि जिव हरि पाई॥

दोहा

हरित भूमि तृनसंकुल, समुझि परहिँ नहिं पन्थ।
जिमि पाखंड विवाद तें, गुप्त होहिं सद्ग्रन्थ॥

चौपाई

दादुरधुनि चहुँ दिसा सुहाई। वेद पढ़हि जनु बटुसमुदाई॥
नवपल्लव भये विटप अनेका। साधक मन जस मिले विवेका॥
अर्क जवास पातु विनु भयऊ। जस सुराज खल उद्यम गयऊ॥
खोजत कतहुँ मिलइ नहि धूरी। करइ क्रोध जिमि धर्महि दूरी॥
ससिसम्पन्न सोह महि कैसी। उपकारी कै सम्पति जैसी॥
निसि तम घन खद्योत विराजा। जनु दम्भिन कर मिला समाजा॥
महावृष्टि चलि फूटि कियारी। जिमि सुतंत्र भये बिगरहिं नारी॥
कृषी निरावहिं चतुर किसाना। जिमि बुध तजहिं मोह मद माना॥
देखियत चक्रवाक खग नाहीं। कलिहि पाइ जिमि धर्म पराहीं॥
ऊसर बरषइ तृन नहिं जामा। जिमि हरि-जन-हिय उपज न कामा॥
विविधि जन्तु संकुल महि भ्राजा। प्रजा बाढ़ जिमि पाइ सुराजा॥
जहँ तहँ रहे पथिक थकि नाना। जिमि इन्द्रियगन उपजे ग्याना॥

दोहा

कबहुँ प्रबल चल मारुत, जहँ तहँ मेघ बिलाहिँ ।
जिमि कपूत के ऊपजें, कुल सद्धर्म नसाहिँ ॥
कबहुँ दिवस महुँ निबिडतम, कबहुँक प्रगट पतंग ।
बिनसइ उपजइ ग्यान जिमि, पाइ कुसंग सुसंग ॥

चौपाई

बरषा बिगत सरद रितु आई । लछिमन देखहु परम सुहाई ॥
फूले कास सकल महि छाई । जनु बरषा-कृत प्रगट बुढ़ाई ॥
उदित अगस्त पंथ जल सोषा । जिमि लोभहि सोषहि संतोषा ॥
सरिता सर निर्मल जल सोहा । संत हृदय जस गत-मद-मोहा ॥
रस रस सूख सरित-सर-पानी । ममता त्याग करहिँ जिमि ग्यानी॥
जानि सरदरितु खंजन आये । पाइ समय जिमि सुकृत सुहाये ॥
पंक न रेनु सोह असि धरनी । नीति-निपुन-नृप की जसि करनी ॥
जलसंकोच बिकल भइ मीना । अबुध कुटुम्बी जिमि धनहीना ॥
बिनु घन निर्मल सोह अकासा । हरिजन इव परिहर'सब आसा ॥
कहुँ कहुँ वृष्टि सारदी थोरी । कोउ एक पाव भगति जसि मोरी ॥

दोहा

चले हरषि तजि नगर नृप, तापस बनिक भिखारि ।
जिमि हरि भगति पाइ स्रम, तजहिँ आस्रमी चारि ॥

चौपाई

सुखी मीन जे नीर अगाधा । जिमि हरिसरन न एकउ बाधा ॥
फूले कमल सोह सर कैसा । निरगुन ब्रह्म सगुन भये जैसा ॥
गुंजत मधुकर मुखर अनूपा । सुन्दर खगरव नाना रूपा ॥
चक्रवाकमन दुख निसि पेखी । जिमि दुर्जन परसम्पति देखी ॥

चातक रटत तृषा अति ओही। जिमि सुख लहइ न संकरद्रोही॥
सरदातप निसि ससि अपहरई। संतदरस जिमि पातक टरई॥
देखि इन्दु चकोरसमुदाई। चितवहि जिमि हरिजन हरि पाई॥
मसकदंस बीते हिमत्रासा। जिमि द्विज द्रोह किये कुलनासा॥

दोहा

भूमि जीव संकुल रहे, गये सरदरितु पाइ।
सद्गुरु मिलें जाहिं जिमि, संसय-भ्रम समुदाइ॥

लंका में हनुमान

[अपने प्रण के अनुसार सुग्रीव ने सीताजी को खोजने के लिये चारों दिशाओं में वानर भेजे हैं। जामवन्त, अंगद, हनुमान आदि दक्षिण दिशा की ओर भेजे गये हैं। चलते समय श्रीरामचन्द्र जी ने हनुमान जी को अपनी अँगूठी देदी है। समुद्र के किनारे पहुँचने पर इस दल की गति का अवरोध हो गया है। यह देख अकेले हनुमान जी समुद्र पार कर लँका में पहुँचे हैं। वे एक पहाड़ की चोटी पर चढ़ कर लंका का निरीक्षण कर रहे हैं। उन्होंने वहाँ से जो कुछ देखा था उसीका वृतान्त नीचे दिया जाता है।]

छन्द

कनककोट विचित्र-मनि-कृत सुन्दरायत अति घना।
चउहट्ट हट्ट सुबट्ट बीथी चारु पुर बहु विधि बना॥
गज बाजि खच्चर निकर पदचर रथ बरूथन्हि को गनइ।
बहुरूप निसिचरजूथ अति बल सेन बरनत नहिँ बनइ॥
बन बाग उपवन बाटिका सर कूप बापी सोहहीँ।
नर-नाग-सुर-गंधर्व-कन्या-रूप मुनिमन मोहहीँ॥
कहुँ माल देह बिसाल सैलसमान अति बल गर्जहीँ।
नाना अखारेन्ह भिरहिँ बहुविधि एक एकन्ह तर्जहीँ॥
करि जतन भट कोटिन्ह विकट तन नगर चहुँ दिसि रच्छहीँ।
कहुँ महिष मानुष धेनु खर अज खल निसाचर भच्छहीँ॥
एहि लागि तुलसीदास इन्हकी कथा कछुयक है कही।
रघुबीर-सर-तीरथ-सरीरन्हि त्यागि गति पइहहि सही॥

दोहा

पुररखवारे देखि बहु, कपि मन कीन्ह विचार।
अति लघु रूप धरउँ निसि, नगर करउँ पइसार॥

चौपाई

मसकसमान रूप कपि धरी। लंकहि चलेउ सुमिरि नरहरी॥
अति-लघु-रूप धरेउ हनुमाना। पैठा नगर सुमिरि भगवाना॥
मंदिर मंदिर प्रति करि सोधा। देखे जहँ तहँ अगनित जोधा॥
गयउ दसाननमंदिर माहीँ। अतिविचित्र कहि जात सो नाहीँ॥
सयन किये देखा कपि तेही। मन्दिर महुँ न दीख वैदेही॥
भवन एक पुनि दीख सुहावा। हरिमन्दिर तहँ भिन्न बनावा॥

दोहा

रामायुध अंकित गृह, सोभा बरनि न जाइ।
नव तुलसी के वृंद तहँ, देखि हरष कपिराइ॥

चौपाई

लंका निसिचर-निकर-निवासा। इहाँ कहाँ सज्जन कर वासा॥
मन महुँ तरक करइ कपि लागा। तेही समय विभीषनु जागा॥
राम राम तेहि सुमिरन कीन्हा। हृदय हरष कपि सज्जन चीन्हा॥
एहि सन हठि करिहउँ पहिचानी। साधु तेँ होइ न कारज हानी॥
विप्ररूप धरि वचन सुनाये। सुनत बिभीषन उठि तहँ आये॥
करि प्रनाम पूछी कुसिलाई। विप्र कहहु निज कथा बुझाई॥
की तुम्ह हरिदासन महुँ कोई। मोरे हृदय प्रीति अति होई॥
की तुम्ह राम-दीन्ह-अनुरागी। आयहु मोहि करन बड़भागी॥

दोहा

तब हनुमन्त कही सब, रामकथा निज नाम।
सुनत जुगल तन पुलक मन, मगन सुमिरि गुनग्राम॥

चौपाई

सुनहु पवनसुत रहनि हमारी। जिमि दसनन्हि महँ जीभ बिचारी
तात कबहुँ मोहिँ जानि अनाथा। करिहहिँ कृपा भानु-कुल-नाथा॥
तामस तनु कछु साधन नाहीँ। प्रीति न पदसरोज मन माहीँ॥
अब मोहिँ भा भरोस हनुमन्ता। बिनुहरिकृपा मिलहिँ नहिँ संता॥
जौं रघुबीर अनुग्रह कीन्हा। तो तुम्ह मोहिँ दरसु हठि दीन्हा॥
सुनहु बिभीषन प्रभु कै रीती। करहिँ सदा सेवक पर प्रीती॥
कहहु कवन मैँ परम कुलीना। कपि चंचल सब ही विधि हीना॥
प्रात लेइ जो नाम हमारा। तेहि दिन ताहि न मिलइ अहारा॥

दोहा

अस मैँ अधम सखा सुनु, मोहू पर रघुवीर।
कीन्ही कृपा सुमिरि गुन, भरे बिलोचन नीर॥

चौपाई

जानतहूँ अस स्वामि बिसारी। फिरहिँ ते काहे न होहिँ दुखारी॥
एहि बिधि कहत राम-गुन-ग्रामा। पावा अनिर्वाच्य बिश्रामा॥
पुनि सब कथा बिभीषन कही। जेहि बिधि जनकसुता तहँ रही॥
तब हनुमंत कहा सुनु भ्राता। देखा चहउँ जानकीमाता॥
जुगुति बिभीषन सकल सुनाई। चलेउ पवनसुत बिदा कराई॥
करि सोइ रूप गयउ पुनि तहवाँ। बन असोक सीता रह जहवाँ॥
देखि मनहिँ महुँ कीन्ह प्रनामा। बैठेहि बीति जात निसि जामा॥
कृस तनु सीस जटा एक बेनी। जपति हृदय रघुपति-गुन-श्रेनी॥

दोहा

निज पद नयन दिये मन, रामचरन महँ लीन ।
परमदुखी भा पवनसुत, निरखि जानकी दीन ॥

सोरठा

कपि करि हृदय विचार, दीन्ह मुद्रिका डारि तव ।
जनु असोक अँगार, दीन्ह हरषि उठि कर गहेउ ॥

चौपाई

तव देखी मुद्रिका मनोहर । राम नाम अंकित अति सुन्दर ॥
चकित चितव मुदरी पहिचानी । हरष विषाद हृदय अकुलानी ॥
जीति को सकइ अजय रघुराई । माया तें अस रचि नहि जाई ॥
सीता मन विचार कर नाना । मधुर वचन बोलेउ हनुमाना ॥
राम-चन्द्र-गुन बरनन लागा । सुनतहि सीता कर दुख भागा ॥
लागी सुनइ श्रवन मन लाई । आदिहुँ ते सब कथा सुनाई ॥
श्रवनामृत जेहि कथा सुहाई । कहि सो प्रगट होत किन भाई ॥
तव हनुमंत निकट चलि गयऊ । फिरि वैठी मन बिसमय भयऊ ॥
रामदूत मैं मातु जानकी । सत्य सपथ करुनानिधान की ॥
यह मुद्रिका मातु मैं आनी । दीन्हि राम तुम्ह कहँ सहिदानी ॥
नर वानरहि संग कहु कैसे । कही कथा भइ संगति जैसे ॥

दोहा

कपि के बचन सप्रेम सुनि, उपजा उर विस्वास ।
जाना मन क्रम बचन यह, कृपासिन्धु कर दास ॥

चौपाई

हरिजन जानि प्रीति अति वाढ़ी । सजल नयन पुलकावलि ठाढी ॥
बूड़त विरह जलधि हनुमाना । भयहु तात मो. कहँ जलजाना ॥

अब कहु कुसल जाउँ बलिहारी। अनुज सहित सुख भवन खरारी॥
कोमल चित कृपालु रघुराई। कपि केहि हेतु धरी निठुराई॥
सहजबानि सेबक-सुख-दायक। कबहुँक सुरति करत रघुनायक॥
कबहुँ नयन मम सीतल ताता। होइहहि निरखिस्याम-मृदु-गाता॥
बचन न आव नयन भरि बारी। अहह नाथ हौं निपट बिसारी॥
देखि परम बिरहाकुल सीता। बोला कपि मृदु बचनबिनीता॥
मातु कुसल प्रभु अनुज समेता। तब दुख-दुखी सु-कृपा-निकेता॥
जनि जननी मानहु जिय ऊना। तुम्ह तें प्रेम राम कइ दूना॥

दोहा

रघुपति कर सदेस अब, सुन जननी धरि धीर।
अस कहि कपि गद्गद भयउ, भरे बिलोचन नीर॥

चौपाई

कह कपि हृदय धीर धरु माता। सुमिरु राम सेवक सुख दाता॥
उर आनहु रघु-पति-प्रभुताई। सुनि मम बचन तजहु कदराई॥

दोहा

निसि-चर-निकर पतंग सम, रघुपति बान कृसानु।
जननी हृदय धीर धरु, जरे निसाचर जानु॥

चौपाई

जो रघुबीर होति सुधि पाई। करते नहि बिलम्ब रघुराई॥
रामबान रबि उये जानकी। तमबरूथ कहँ जातुधानु की॥
अबहि मातु मैं जाउँ लेवाई। प्रभु आयसु नहि रामदोहाई॥
कछुक दिवस जननी धरु धीरा। कपिन सहित अइहहिँ रघुबीरा॥
निसिचर मारि तोहि लइ जैहहि। तिहुँ पुर नारदादि जस गैहहि॥
हैं सुत कपि सब तुम्हहि समाना। जातुधान भट अतिबलवाना॥

मोरे हृदय परम सन्देहा। सुनि कपि प्रगट कीन्ह निज देहा॥
कनक - भूधरा - कार - सरीरा। समरभयङ्कर अति बल-बीरा॥
सीता मन भरोस तब भयऊ। पुनि लघुरूप पवनसुत लयऊ॥

दोहा

सुनु माता साखामृग, नहिँ बल बुद्धि बिसाल।
प्रभुप्रताप तेँ गरुड़हिँ, खाइ परम लघु ब्याल॥

चौपाई

मन सन्तोष सुनत कपिबानी। भगति-प्रताप - तेज- बल-सानी॥
आसिष दीन्ह रामप्रिय जाना। होहु तात बल-सील-निधाना॥
अजर अमर गुन-निधि सुत होहू। करहि सदा रघुनायक छोहू॥
करहु कृपा प्रभु अस सुनि काना। निर्भर प्रेममगन हनुमाना॥
बार बार नायेसि पद सीसा। बोला बचन जोरि कर कीसा॥
अब कृतकृत्य भयउँ मैं माता। आसिष तव अमोघ बिख्याता॥
सुनहु मातु अतिसय मैं भूखा। लागि देखि सुन्दर फल रूखा॥
सुन सुत करहिँ बिपिन रखवारी। परम सुभट रजनीचर भारी॥
तिन कर भय माता मोहि नाहीँ। जौ तुम्हसुखमानहु मन माहीँ॥

दोहा

देखि बुद्धि-बल-निपुन कपि, कहेउ जानकी जाहु।
रघुपति-चरन हृदय धरि, तात मधुर फल खाहु॥

चौपाई

चलेउ नाइ सिरु पैठेउ बागा। फल खायेसि तरु तोरै लागा॥
रहे तहाँ बहु भट रखवारे। कछु मारेसि कछु जाइ पुकारे॥
नाथ एक आवा कपि भारी। तेहि असोकबाटिका उजारी॥
खायेसि फल अरु बिटप उजारे। रच्छक मर्दि मर्दि महि डारे॥

सुनि रावन पठये भट नाना। तिन्हहि देखि गर्जेउ हनुमाना॥
सब रजनीचर कपि सँहारे। गये पुकारत कछु अधमारे॥
पुनि पठयेउ तेहि अक्षयकुमारा। चला संग लेइ सुभट अपारा॥
आवत देखि बिटप गहि तर्जा। ताहि निपाति महाधुनि गर्जा॥

दोहा

कछु मारेसि कछु मर्देसि, कछुक मिलायेसि धूरि।
कछु पुनि जाइ पुकारेउ, प्रभु मर्कट बलभूरि॥

चौपाई

सुनि सुतवध लंकेस रिसाना। पठयेसि मेघनाद बलवाना॥
मारेसि जनि सुत बाँधेसु ताही। देखिय कपिहि कहाँ कर आही॥
चला इन्द्रजित अतुलित जोधा। बंधुनिधन सुनि उपजा क्रोधा॥
कपि देखा दारुन भट आवा। कटकटाय गर्जा अरु धावा॥
अति बिसाल तरु एक उपारा। बिरथ कीन्ह लंकेस-कुमारा॥
रहे महाभट ताके सङ्गा। गहि गहि कपि मर्दइ निज अङ्गा॥
तिन्हहिं निपाति ताहि सन बाजा। भिरे जुगल मानहुँ गजराजा॥
मुठिका मारि चढ़ा तरु जाई। ताहि एक छन मुरुछा आई॥
उठि बहोरि कीन्हेसि बहु माया। जीति न जाय प्रभंजन-जाया॥

दोहा

ब्रह्म - अस्त्र तेहि साधा, कपि मन कीन्ह बिचार।
जौं न ब्रह्मसर मानउँ, महिमा मिटइ अपार॥

चौपाई

ब्रह्मबान कपि कहँ तेहि मारा। परतिहुँ बार कटकु संहारा॥
तेहि देखा कपि मुरुछित भयऊ। नागपास बाँधेसि लेइ गयऊ॥

जासु नाम जपि सुनहु भवानी। भवबंधन काटहि नर ग्यानी ॥
तासु दूत कि बँध तरु आवा। प्रभु कारज लगि कपिहि बँधावा ॥
कपिबँधन सुनि निसिचर धाये। कौतुक लागि सभा सब आये ॥
दस-मुख सभा दीख कपि जाई। कहि न जाइ कछु अति प्रभुताई ॥
कर जोरे सुर दिसिप विनीता। भृकुटि विलोकत सकल सभीता ॥
देखि प्रताप न कपि मन* संका। जिमि अहिगन महँ गरुड़ असंका ॥

दोहा

कपिहि विलोकि दसानन, विहँसा कहि दुर्वाद।
सुत-वध सुरति कीन्ह पुनि, उपजा हृदय विषाद ॥

चौपाई

कह लंकेस कवन तैं कीसा। केहि के बल घालेसि बन खीसा ॥
की धौं स्रवन सुने नहिं मोही। देखउँ अति असंक सठ तोही ॥
मारे निसिचर केहि अपराधा। कहु सठ तोहि न प्रान कै बाधा ॥
सुन रावन ब्रह्माण्डनिकाया। पाइ जासु बल बिरचित माया ॥
जाके बल बिरंचि हरि ईसा। पालत सृजत हरत दससीसा ॥
जा बल सीस धरत सहसानन। अंडकोस समेत गिरि कानन ॥
धरे जो विविध देह सुरत्राता। तुम्ह से सठन्ह सिखावनदाता ॥
हरकोदंड कठिन जेहि भंजा। तेहि समेत नृप-दल-मद-गंजा ॥
खर दूषन त्रिसिरा अरु बाली। बधे सकल अतुलित-बल-साली ॥

दोहा

जा के बल लवलेस तें, जितेउँ चराचर झारि।
तासु दूत मैं जा करि, हरि आनेहु प्रियनारि ॥

---

* पाठान्तर—उर।

जानउँ मैं तुम्हारि प्रभुताई। सहसबाहु सन परी लराई॥
समर बालि सन करि जस पावा। सुनि कपिबचन बिहँसि बहरावा॥
खायेउँ फल मोहि लागी भूखा। कपिसुभाव तें तोरेउँ रूखा॥
सब के देह परमप्रिय स्वामी। मारहिं मोहि कुमारगगामी॥
जिन्ह मोहि मारा ते मैं मारे। तेहि पर बाँधेउ तनय तुम्हारे॥
मोहि न कछु बाँधे कइ लाजा। कीन्ह चहउँ निज प्रभु कर काजा॥
बिनती करउँ जोरि कर रावन। सुनहु मान तजि मोर सिखावन॥
देखहु तुम्ह निज कुलहि बिचारी। भ्रम तजि भजहु भगत-भय-हारी॥
जाके डर अति काल डराई। सो सुर असुर चराचर खाई॥
ता सों बैरु कबहुँ नहिं कीजै। मोरे कहे जानकी दीजै॥

दोहा

प्रनतपाल रघुनायक, करुनासिंधु खरारि।
गये सरन प्रभु राखिहिं, तव अपराध बिसारि॥

चौपाई

राम-चरन-पंकज उर धरहू। लंका अचल राज तुम्ह करहू॥
रिषि-पुलस्ति-जस बिमल मयंका। तेहि ससि महँ जनि होहु कलंका॥
रामनाम बिनु गिरा न सोहा। देखु बिचारि त्यागि मद मोहा॥
बसनहीन नहिं सोह सुरारी। सब-भूषन-भूषित बर नारी॥
रामबिमुख सम्पति प्रभुताई। जाइ रही पाई बिनु पाई॥
सजल मूल जिन्ह सरितन्ह नाहीं। बरषि गये पुनि तबहिं सुखाहीं॥
सुनु दसकंठ कहउँ पन रोपी। बिमुख राम त्राता नहिं कोपी॥
संकर सहस बिष्णु अज तोही। सकहि न राखि राम कर द्रोही॥

दोहा

मोहमूल बहु सूलप्रद, त्यागहु तम अभिमान।
भजहु राम रघुनायक, कृपासिंधु भगवान॥

चौपाई

जदपि कही कपि अति हित वानी । भगति-विवेक विरति-नय-सानी ॥
बोला विहँसि महा अभिमानी । मिला हमहिं कपि गुरुबड ग्यानी॥
मृत्यु निकट आई खल तोही । लागेसि अधम सिखावन मोही ॥
उलटा होइहि कह हनुमाना । मतिभ्रम तोरि प्रगट मैं जाना ॥
सुनि कपिवचन बहुत खिसिआना । बेगि न हरहु मूढ़ कर प्राना ॥
सुनत निसाचर मारन धाये । सचिवन्ह सहित विभीषन आये ॥
नाइ सीस करि विनय बहूता । नीतिविरोध न मारिय दूता ॥
आन दंड कछु करिय गोसाईं । सब ही कहा मंत्र भल भाई ॥
सुनत विहँसि बोला दसकंधर । अङ्ग भङ्ग करि पठइअ बन्दर ॥

दोहा

कपि कै ममता पूँछ पर, सबहिं कहेउ समुझाइ ।
तेल बोरि पट बाँधि पुनि, पावक देहु लगाइ ॥

चौपाई

पूँछहीन बानर तहँ जाइहि । तब सठ निज नाथहिं लेइ आइहि॥
जिन्ह कै कीन्हेसि बहुत बडाई । देखउँ मैं तिन्ह कै प्रभुताई ॥
वचन सुनत कपि मन मुसुकाना । भइ सहाय सारद मैं जाना ॥
जातुधान सुनि रावनवचना । लागे रचै मूढ़ सोइ रचना ॥
रहा न नगर वसन घृत तेला । बाढ़ी पूँछ कीन्ह कपि खेला ॥
कौतुक कहँ आये पुरवासी । मारहिं चरन करहिं बहु हाँसी ॥
बाजहिं ढोल देहिं सब तारी । नगर फेरि पुनि पूँछ प्रजारी ॥
पावक जरत दीख हनुमता । भयउ परम लघु रूप तुरन्ता ॥
निबुकि चढ़ेउ कपिकनक अटारी । भईं सभीत निसाचर नारी ॥

दोहा

हरिप्रेरित तेहि अवसर, चले मरुत उनचास ।
अट्टहास करि गर्जेउ, कपि बढ़ि लाग अकास ॥

चौपाई

देह बिसाल परम हरुआई। मन्दिर तें मन्दिर चढ़ धाई॥
जरइ नगर भा लोग बिहाला। झपट लपट बहु कोटि कराला॥
तात मातु हा सुनिय पुकारा। एहि अवसर को हमहिं उबारा॥
हम जो कहा यह कपि नहिं होई। वानररूप धरे सुर कोई॥
साधु अवज्ञा कर फल ऐसा। जरइ नगर अनाथ कर जैसा॥
जारा नगरु निमिष एक माहीं। एक बिभीषन कर गृह नाहीं॥
ता कर दूत अनल जेहि सिरिजा। जरा न सो तेहि कारन गिरिजा।
उलटि पलटि लंका सब जारी। कूदि परा पुनि सिन्धु मँझारी॥

दोहा

पूँछि बुझाइ खोइ स्रम, धरि लघुरूप बहोरि।
जनकसुता के आगे ठाढ़ भयउ कर जोरि॥

चौपाई

मातु मोहि दीजै कछु चीन्हा। जैसे रघुनायक मोहि दीन्हा॥
चूड़ामनि उतारि तब दयेऊ। हरषसमेत पवनसुत लयेऊ।
कहेउ तात अस मोर प्रनामा। सब प्रकार प्रभु पूरनकामा॥
दीन-दयालु-बिरुद संभारी। हरहु नाथ मम संकट भारी॥
मास दिवस महुँ नाथ न आवा। तौ पुनि मोहि जियत नहिं पावा॥
कहु कपि केहि बिधि राखउँ प्राना। तुम्हहूँ तात कहत अब जाना॥
तोहि देखि सीतल भइ छाती। पुनि मो कहुँ सोइ दिनु सोइ राती॥

दोहा

जनकसुतहिं समुझाइ करि, बहुबिध धीरजु दीन्ह।
चरनकमल सिरु नाइ कपि, गवनु राम पहिं कीन्ह॥

Page 19 आवत इहि सर etc Mansarovar lake is not easy of access One cannot get to it without His favour. The way lies through dense forests and high icy mountains full of dangers from wild animals and fearful lions. The poet compares the study of the Ramayana with the difficulties that beset a traveller to the Mansarovar

" 20 संबल – Expenses

" " त्रयताप – The three kinds of miseries which human beings have to suffer in this world *Viz* — दैहिक, दैविक ; आधिभौतिक

" " स्रोता त्रिविधं—मुक्त, मुमुक्षु और विषयी।

" 22 भरी—Full

" " अवलोकनि etc. ; Looking of the four brothers towards each other, their talk, their meeting, their brotherly considerations, is like the sweetness of taste and of smell of the water of Mansarovar. [This means that the talk, appearance and everything about the four brothers was pleasing]

" 23 चौथपनु—The fourth stage , old age.

" " धेनुमति :—Another name of गोमती

" " द्वादशअक्षर मंत्र—" ओं नमो भगवतेवासुदेवाय "

" " समीर वायु - समीरअधार is another reading. Lived on air only, *i e.*, remained without food

" 25 मयंक - The moon

" " दर शंख

" 26. राजीव—कमल.

" 27 कहेउ सतभाउ — Declare honestly.

" " दुराउ—Concealment

" " एवमस्तु — Amen , so be it

Page 32 रंक—Beggar, poor man.
„ „ अवनीसा—The lord of the Earth; king
„ „ सचिव Minister
„ „ तुलसी जसि भवितब्यता etc—Says Tulsidas, Fate adapts circumstances to its own end, it is not brought to a man, but it carries a man.

„ 33 छल बल कीन्ह चहइ निज काजा—Wished to accomplish his own ends by hook or by crook
„ „ सुखि राजसुख दुखित अराती—etc
In his enmity he was grieved to see the king's prosperity, and his heart burned within him like the fire of an oven.
„ „ सरल बचन—simple words
„ „ संभारि or सभाल कर—having controlled
„ „ रहित निकेतु—Homeless
„ „ अपनपौ—Personality अपनेपन को
„ „ आप बिषय etc—(and his growing confidence towards him)
„ „ लोक-मान्यता—worldly honour
„ 34 तुलसी देख सुवेखु etc.—
Fools are deceived by fair appearances, but not the wise A peacock is fair to look at, and its voice is also (pleasing) like nectar, yet it eats snakes

[N B The peacock's voice can hardly be called (pleasing) to the ear in itself. Its association with the cloudy darkness of the rains makes it so.

„ „ हरि तजि etc—Save Hari, have no concern whatever
„ „ बगध्यानी—So called, because the बक (बगुला) by appearance looks a harmless creature, but catches fishes and eats them

up Said of a man who puts on false appearances of, बगला भगत

(e 34 उद्भव पालन प्रलय कहानी—Tales of the creation preservation and destruction of the world

„ 35 तपबल etc —A Brahman by virtue of penance is ever powerful

„ 36 बना आइ असमंजस आजु—Thus I am in a dilemma to day

„ „ निगम—The holy texts

„ „ बड़े सनेह लघुन्ह पर etc —The great show of kindness to the small and the mountains always bear tiny grasses on their heads

„ „ जलधि अगाधा—The fathomless ocean bears on its surface the floating foam, and earth bears on its head the dust

„ 37 मोहि लागि For my sake

„ „ जोग जुगुतितप etc —Absorption in God, observance of penances and the power of magical devices, work only when secrecy is maintained जोग जुगुति—परमेश्वर के ध्यान में लग जाना।

„ „ जेंवर—जेंवे is another reading,—Dines

„ „ राया—राजा—A king

„ „ उपरोहित—Family priest

„ 38 रिपुतेजसी अकेल अपि etc,

A powerful enemy, though alone, is not to be lightly regarded, to this day Rahu, though he has nothing left but his head, is able to annoy both the sun and the moon

„ „ जातुधान—The demon राक्षस

„ „ सोई, सोई, सोहि are different readings

„ 39 षटरस—The six tastes are—the sweet (मधुर),

sour, (अम्ल), salt लवण, bitter (कटु); pungent (तिक्त) ; and astringent (कषाय)

Page 39 चारिविधि—The four kinds of food taken are भक्ष्य, भोज्य, पेय, and लेह्य.

" " बिंजन बहु—Various preparations of food

" 40 बन्धु, King

" " साप विचारि न दीन्हा—Have uttered the curse without due consideration

" " सुआरा cook

भूपति भावी etc —O king, though you are innocent but what is fated cannot fail, what is done cannot be undone Brahman's curse is a terrible thing

" " बिरचत हंस etc —Who had begun upon a swan and ended in a crow Read विरचत for बिचरत

" 41 सारंग पानी —The god Vishnu

" 43 माया गुन ग्यानातीत etc.—The sacred scriptures describe you to be far above the world's confusion and reason's vain intrusion माया गुन are three ; सत्वगुण the quality of enlightenment, रजोगुण, the quality of activity or restlessness, तमोगुण (the quality of dullness or darkness)

" 45 चूड़ा-करन —The ceremony of tonsure, मुंडन.

" 46. ग्यान बिराग etc —Who is the abode of all knowledge, piety and goodness

" 47 भये मगन—Was enraptured

मुख दुति—अपभ्रंश of मुखद्युति. Splendour of his face.

" 48 कुम्हिलानी—Waned ; grew less

" 49. उपलदेह—Adamantine body.

Page 50 देखि महीप सकल सकुचाने etc —At the sight of him the kings were all cowered down, as a partridge shrinks before the swoop of a hawk

„ 51 सतबेष etc — Parashuram) Of saintly attire and dreadful actions with an appearance beyond description drew near the kings It looked as if, Heroism was there in person.

„ 52 अर्धनिमेष etc —A second passed by the length of an age

„ „ एहि धनुपर etc —Why have you a special fondness for this bow ?

रेनृप बालक etc —Ah ! death—doomed prince ! why will you not mend your speech ? Is the world-famed bow of Shiva like a common bow ?

„ 53 गर्भक के अर्भक दलन etc —My axe is very cruel it has ripped up even unborn infants in the womb

चहत उडावन फूकि पहारू—You want to blow up a mountain with a puff of air

„ „ इहाँ कुम्हड़ बतिया etc —I am not a fresh blossom of काशीफल or कुम्हड़ा that droops as soon as it sees a finger raised against it

„ 54 सूर समर करनी करहिं etc —The valiants perform high deeds in fight, but do not themselves publish them. Cowards, finding a foe before them in the battle begin to brag

„ „ तुम्ह तौ etc —You seem to have brought Death as your associate, for you have so often called it before me

„ „ बाँचा Spared

Page 54 बाल-दोष-गुन etc —The wise regard not the faults or merits of children

„ 61. हेतु जान जगदीसु—God knows the cause

„ 62 सकहु तो आयसु धरहु सिर etc —If it lies in your power, be obedient to his commands and thereby put an end to his misery

„ „ सुनत कठिनता etc —Cruelty itself was disturbed to hear her.

„ „ जनु कठोरपनु etc.—As though Obduracy had taken form

„ 63 सहज सरल—Naturally straight-forward

जोंकि—A leech

„ „ लागहिं कुमुख बचन सुभ कैसे etc —These fair words in her false mouth were like Gaya and other holy places in Magadha

„ „ सुरसरि—The Ganges (The river of the gods)

„ 64 देस काल अवसर अनुसारी—As the place, the time, and the circumstances demand

„ „ सुतीछी—Bitter

„ „ दवारी—Fire

„ 65. कबहुँ न कीयहु सवति आरेसू—You have never shown any jealousy towards your rival queens

„ „ भूजब—भोगेंगे—Enjoy

„ „ धरमधुरीन—The Righteous.

„ „ बिषयरस रूखे—Averse to the pleasures of senses.

„ 66. कुटिल प्रबोधी कूबरी—Having been tutored in villainy by the hunch backed wench.

„ „ असाधि—Incurable.

Page 66. पयद—पय दूध ; द—देनेवाला ; Breasts , teats

„ 67. करि पितु बचन प्रमान—Making good my father's vow , in obedience to my father's words

„ „ मलान, म्लान ; Uneasy

„ „ निदानु—The reason.

„ 68 छछुन्दर—Musk-rat.

„ „ लेश—Least ; किञ्चिन्मात्र

„ „ दुसह दाहु—Affliction ; trouble , pain

„ „ यहि बिचारि etc.—Having thus thought I do not persist in my course with a show of love beyond what I really feel, agree to your mother's request , or if you go alone, at least I beseech you not to forget me.

„ „ राखहु etc —Guard you as closely as the eye-lids protect the eyes

„ 69 चरन लपटानी—Clung to his feet.

„ 70 गालव नहुष नरेस—

Galav (गालव) was a disciple of Vishwamitra When he had completed his studies, he requested his Guru to accept some fee (दक्षिणा) ; Vishwamitra refused such an offer. But, he persisted Being annoyed at this, the sage asked him to present 1,000 white horses with black ears The pupil had to encounter many troubles before he could collect even as many as six hundred.

„ „ भूमिसयन etc

The ground will be your bedding, the bark of trees your raiment, and wild fruits and roots your food. These things even would not be always forthcoming.

„ „ कपट बेष—deceptive forms

Page 71 सहज सुहृद etc

One who does not act up to the advice of a true friend, preceptor or one's husband or master regarding it beneficial, shall undoubtedly have enough of repentance and little of good

" " बरबस—Perforce.

" " प्रान नाथ etc.—

O my dear lord! the abode of mercy most beautiful! bounteous and wise! the moon of the lilies of the Raghus! even heaven without you would be hell to me

" 72 दुकूल—Robes.

" " बनदेवी—Sylvan deity.

" 73. बचनवियोग—Even the thought of separation put in words, (what to say of actual separation)

" अहिवात—सुहाग—सौभाग्य

" " सनीरा—जल सहित

" 74 मातु पिता etc.—Those who submit cheerfully to the commands of their father, mother, and their precepter or their master have, really profited by their being born in this world, while other's birth is in vain.

" " जासुराज etc.—The king whose faithful subjects live in distress is truly a king doomed to go to hell

" " परसत तुहिन तामरस जैसे—As lotus with the touch of frost

" 75 धरमनीति etc—Give precepts of virtue and good conduct to him who loves fame, glory and happy life

" " बिनती—Modest.

बढ़ गइ — Ought to be बढ़ गई
तात तुम्हारि etc —
Cf —रामं दशरथं विद्धि मां विद्धि जनकात्मजाम् ।

Page 75 अवध तहां etc *Cf.*—
" " अयोध्यामटवीं विद्धि गच्छ तात यथा सुखम् ।
" " बिआनी — Given birth.
The appropriate use of this word is to be marked ब्याना for giving birth, is used only for *beasts* It is used here for a human being simply because the poet regards such a being only a beast

" " भूरि भाग भाजन भयेउ — You have become the receptacle of great fortune

" 76 बागुर विषम — Perilous snare
" 77 गति — Ways
" 79 सूला (शूल) — Sorrow ; trouble.
" " आना — अन्य , Different
" 80 पाय पलोटत भाय — While the brother (Lakshman) shampooed his feet

" " मूरि-औषध. A charm
" 81 अटपटे — Simple.
" 83 सरिस — Like अपभ्रंश of सदृश
" " लोचन मोचति बारि — Eyes giving out water weeping

" 84 अघटित — Unalterable
" 85 गोठ — Stall (for cows
" " माहुर — Poison.
" 87. भावी प्रबल — Fate is powerful.
" 88 सोचिय — Pitiable. शोचनीय
" " मुखर — वाचाल
" " मोहबश — Overcome by delusion
" 89. The legend of Yayati जजातिह is given in the Vishnu Puran, IV 10

" " ऐन — अयन — Dwelling place , palace.

Page 90. सराहत सकल etc.—An instance of alliteration which is common in Hindi , reverently extolled pure love which had reached *its limit.*

भरत कमलकर—etc —Folding his lotus hands. Bhárat the champion of virtue, collecting himself, made an answer in noble words that seemed as if dipped in nectar.

„ 92. कारन तें कारज कठिन etc —

That every effect is harder than its cause is no fault of mine , for instance the thunderbolt (made out of Dadhichi's bone) is harder than a bone, and iron is harder than the rock of stone from which it is mined out

„ „ जठर—Womb.

„ „ वारुनी—Wine.

„ 93. हिय कै जरनि न जाय—Fire in my heart cannot be quenched.

„ „ आन—अन्य Another.

„ „ आंक—*Lit.* number Wish.

„ 94 पागे—Imbued with.

„ „ लोग बियोग etc —The people suffering from the baneful poison of separation revived as if at the sound of a healing charm.

„ „ अहि-अघ etc.—*The jewel is not infected* with the guilt and villainy of the serpent (in whose head it is found), but heals the pain of poison and poverty

„ 95. हथवाँसहु बोरहु etc.—Be on the alert, up and sink the boat and close the ferry.

„ 96. रोकहु घाट etc.—Close up the ferry, my men

Page 123 झाबर—Muddy.

" " खल कै प्रीति जथा थिर नाहीं—As the friendship of a wicked man is not constant

Cf.—" बिनसत बार न लागही, ओछे जन की प्रीति ।"

" " दादुर—A frog

" 124 बिलाहिँ—Disappear.

" 126 बरूथन्हि—Crowds.

" 127. करउँ पइसार—Shall slip into (the town).

" " मसकसमान—मशक *Lit.*, means a gnat But the word should not be taken here in its literal sense to mean 'a gnat' What follows shows that he 'made himself very small' Moreover, how could he have put the मुद्रिका with him in his mouth, had he transformed himself into a gnat.

Cf.—" धृत्वासूक्ष्मं वपुर्द्वारिं प्रविवेश प्रतापवान् ।"

" 129 सहिदानी—पहिचानी ; token

" " जलजाना—जहाज़.

" 131. साखामृग--A monkey.

" 132 बिरथ—(वि-without, *i e*) Broke his chariot.

" 133 सँहसानन—शेषनाग, who is supposed to have a thousand mouths

" 135. अंगभंग करि—Distorting his limbs.

" 136. बिरुद—यश.

॥ श्री राम ॥

Printed by RAMZAN ALI SHAH at the National Press, Allahabad

महर्षि वाल्मीकि-रचित

संस्कृतमूल

और हिन्दी भाषानुवाद सहित

सचित्र श्रीमद्वाल्मीकि-रामायण

सम्पूर्ण का मूल्य १६)

श्रीमद्रामायण के इस संस्करण में, ऊपर श्लोक दिया गया है और उस श्लोक के नीचे ही उसका हिन्दी में अनुवाद है। इस प्रकार मूल के साथ भाषानुवाद का अपूर्व सम्मिश्रण अथवा कालिन्दी एवं मन्दाकिनी का एक ही स्थान पर पुण्यसङ्गम है। इस प्रकार की सुन्दर अनुवादशैली से कथाप्रसङ्ग की असङ्गति सर्वथा दूर कर दी गयी है। मूलश्लोकों मे प्रयुक्त शब्दों के अर्थ करने में टीकाकारों ने जहाँ विशेष अर्थों से काम लिया है, वहाँ वहाँ उन उन टीकाकारों का नामोल्लेख कर पादटिप्पणी में मूलशब्दों का गणना अङ्क देकर उनका अर्थ ज्यों का त्यों संस्कृत ही में लिख दिया गया है। इसके अतिरिक्त यथास्थान प्रसङ्गत धार्मिक, ऐतिहासिक, एवं राजनीतिक स्वतंत्र टिप्पणियाँ भी दी गयी हैं। इन टिप्पणियों से अनुवाद की उपयोगिता बहुत कुछ बढ़ गयी है। श्रीमद्रामायण के उत्तरभारतीय और दक्षिणभारतीय, संस्करणों मे जो पाठान्तर पाये जाते हैं, उनका भी जगह जगह निर्देश कर दिया गया है। यह ग्रन्थरत्न दस खण्डों में प्रकाशित हुआ है। इसमें स्थान स्थान पर कितने ही सुन्दर रंगीन एवं भावपूर्ण चित्र भी दिये गये हैं।

गोस्वामी तुलसीदास कृत पुस्तकें

१—	तुलसीदासकृत	रामायण छोटा गुटका	.. ...	॥)
२—	,,	,, गुटका	... ...	१)
३—	,,	,, सटीक गुटका	... ...	३)
४—	,,	,, सचित्र बड़े अक्षर में मूल	...	[illegible]
५—	,,	,, सचित्र और सटीक बड़े अक्षर में		[illegible]
६—	,,	विनय-पत्रिका सटीक और सचित्र	...	[illegible])
७—	,,	कवितावली सटीक	... ...	२)
८—	,,	गीतावली सटीक	... ...	[illegible]
९—	,,	दोहावली सटीक	... ...	१)
१०—	,,	रामलला-नहछू सटीक	... ...	=)
११—	,,	वैराग्य-संदीपिनी सटीक	... .	≡)
१२—	,,	बरवै रामायण सटीक	.. ...	≡)
१३—	,,	पार्वती-मंगल सटीक	... ...	।)
१४—	,,	जानकी-मंगल सटीक	... ...	।=)
१५—	,,	तुलसी-रत्नावली सटीक	... ...	१)

मिलने का पता—

रामनरायन लाल

पब्लिशर और बुकसेलर

१, बैंक रोड, इलाहाबाद